अक्तूबर 2024

दादावाणी

Retail Price ₹ 20

ये गाँठें, वे तो आवरण हैं!
जब तक ये गाँठें हैं, तब तक
आत्मा का स्वाद नहीं आने देंगी।
इस ज्ञान के बाद, अब गाँठें
धीरे-धीरे विलय होती जाएँगी,
बढ़ेंगी नहीं अब।

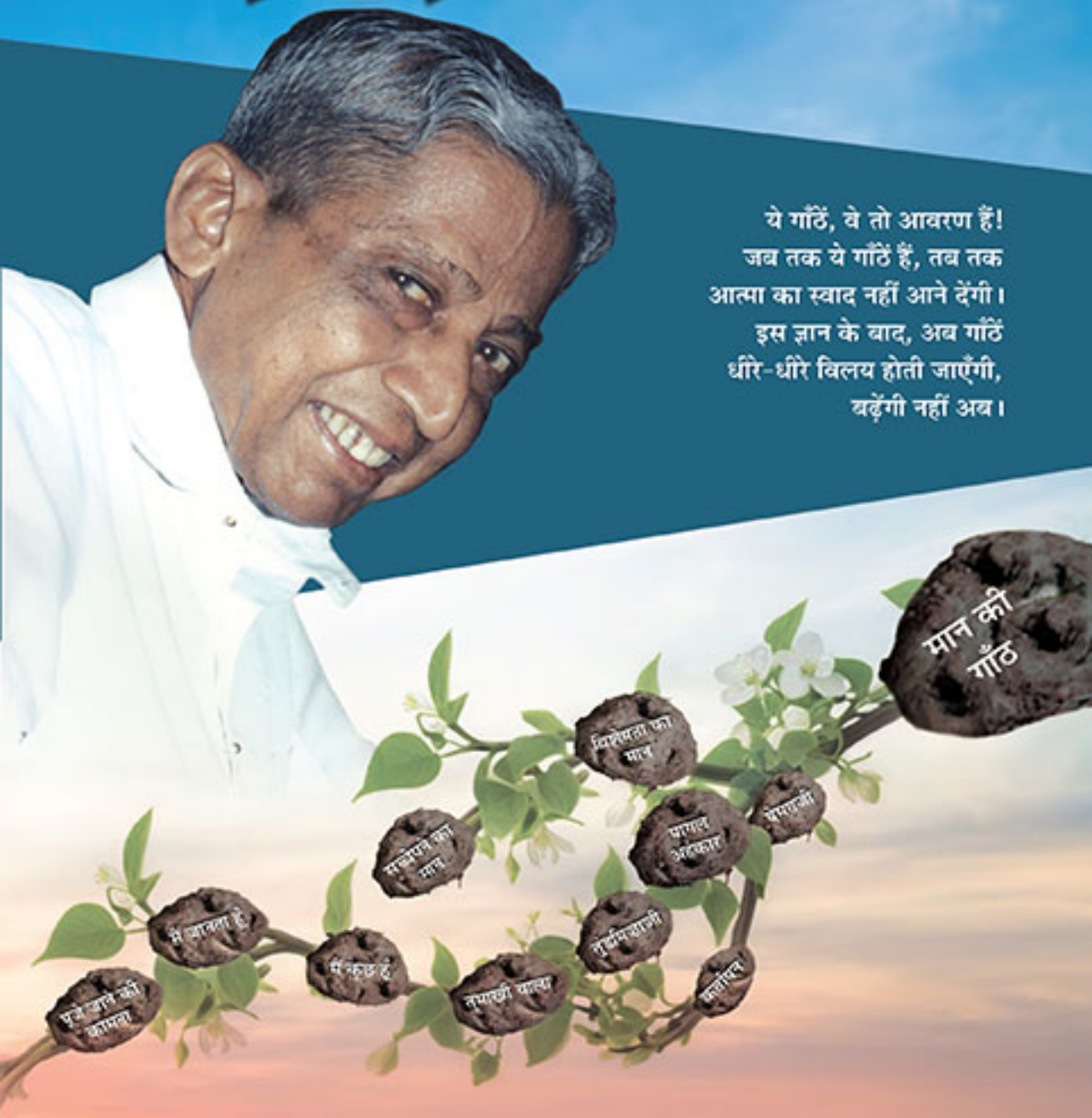

अडालज : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 10-11 अगस्त 2024

बेंगलोर : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 15 अगस्त 2024

जयपुर : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 20-22 अगस्त 2024

वर्ष : 19 अंक : 12
अखंड क्रमांक : 228
अक्तूबर 2024
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2024
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol, Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

निर्ग्रंथ होने के लिए पहचानो 'मान' की गाँठ

संपादकीय

जगत् में लोग किस आधार पर जीते हैं? 'अहंकार'। जहाँ 'खुद' नहीं, वहाँ 'मैं हूँ' मानना वही अहंकार है। मूल में अहंकार है और उससे उत्पन्न होते क्रोध-मान-माया-लोभ, इन कषायों का रूट कॉज़ है अज्ञानता। ज्ञानी पुरुष की कृपा से अज्ञानता छूटते ही अहंकार से हमेशा के लिए छूट जाते हैं परंतु पूर्वजन्म में बंधी हुई स्वभावमय प्रकृति संयोगों के दबाव में उदयमान हुए बगैर नहीं रहेगी। अत: प्रकृति में उत्पन्न होते मोक्षमार्ग के बाधक कारण जो पुरुषार्थ के लिए बाधक बनते हैं। उनकी जानकारी, सावधानी अति महत्वपूर्ण है। ऐसे अनेक बाधक दोषों में से एक 'मान कषाय की गाँठ' को पहचानकर और उसके विविध पर्यायों के सामने जागृतिपूर्वक ज्ञान पुरुषार्थ कर सकते हैं।

प्रस्तुत अंक में, ज्ञानी पुरुष ने अपने जीवन के कुछ प्रसंगों में खुद के अहंकार और मान को देखा, जाना और अनुभव किया, इसलिए मोक्षमार्ग में उत्पन्न होते मान के पर्यायों को पहचानकर उसके ज़ोखिम बता पाए। खुद स्वयं उसमें से बाहर निकल गए, हमें इस मान के गांठ की पहचान करवाई और निर्ग्रंथ होने के ज्ञान उपाय बता सके । इस ज्ञान के बिना मान की गाँठ के पर्यायों को और मान की विकृति को समझना मुश्किल है। उसके लिए तो पहले पहचानना पड़ता है कि मान की कौन से प्रकार की गाँठ है? विशेषता का मान? सच्चेपन का मान? कुशलता का मान? 'मैं कुछ हूँ', 'मैं जानता हूँ', पूजे जाने की कामना, धार्युं करने का मान, कर्तापना, पागल अहंकार, तुंडमिजाजी, तुमाखी वाला, *धेमराजी* वगैरह उसे पहचानकर उसके विरोध में जाग्रत रहना पड़ेगा। बाकी, यह मान में कपट ऐसा है कि मान की गाँठ को पहचानने न दे।

मान के पर्यायों के सामने ज्ञान के उपाय में 'रियल' और 'रिलेटिव' के बीच लाइन ऑफ डिमार्केशन यथार्थ पड़ गई है। रिलेटिव में खुद लघुतम हो जाए तो संसार के दु:खों में समाधि सुख बरतेगा और रियल में गुरुतम पद सहज ही आकर रहेगा। जिसकी इस जगत् में सर्वस्व भीख गई हों, जितना अंत:करण शुद्ध होता जाता है उतनी उसे परमात्मा सत्ता प्राप्त हो सके, ऐसा है।

अक्रम विज्ञान में जिसे मान मिलता है वह चंदू को मिलता है, जिसका अपमान होता है वह भी चंदू का। उसमें मैं कही भी हूँ ही नहीं, वह अंतिम जागृति है। अब हमारी गाँठ फूटें, उसमें हर्ज नहीं है परंतु गाँठ से कहना कि 'जितनी फूटना हो उतनी फूट, तू ज्ञेय है और हम ज्ञाता हैं'। मान की गाँठ को विलय करने के लिए हमें मान को साइन्टिफिक्ली (वैज्ञानिक तौर पर) अलग देखना है और टेक्निकली मान की भीख का भागाकार करके ज्ञान पुरुषार्थ शुरू करना है। जैसे-जैसे मान की गाँठ के आवरण टूटते जाएँगे, वैसे-वैसे आत्मानुभव की श्रेणी बढ़ते-बढ़ते आत्मा के स्पष्टवेदन तक पहुँचा जा सके, यही हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

जय सच्चिदानंद

निर्ग्रंथ होने के लिए पहचानो 'मान' की गाँठ

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलतः गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

कहाँ से और किसे आया अहंकार?

प्रश्नकर्ता : अहंकार क्या है? कहाँ से आया और किसे आया?

दादाश्री : यह विनाशी चीज़ है। कहीं से आता नहीं है। यह उत्पन्न हो जाता है और उसका नाश होता है। फिर डॉक्टर से कहता है कि 'साहब, मैं मर जाऊँगा, मुझे बचाइएगा'। यह जो भुगतता है न, वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार किसे आया?

दादाश्री : जो नासमझी है, उसे। अज्ञान को अहंकार आया।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान तो था, तो उसे भूल कैसे गए?

दादाश्री : ज्ञान पर आवरण आया हुआ है।

प्रश्नकर्ता : हम सब महावीर भगवान के समय में भी थे?

दादाश्री : हाँ, थे।

प्रश्नकर्ता : तो वह सारा ज्ञान क्यों चला गया?

दादाश्री : जब तक अहंकार है तब तक आवरण आते रहते हैं। अहंकार खत्म हो जाए, फिर आवरण नहीं आते।

प्रश्नकर्ता : जब महावीर भगवान के पास थे तब तो अहंकार नहीं था न?

दादाश्री : अहंकार नहीं होता तब तो उन दिनों ही केवलज्ञान हो जाता! लेकिन अहंकार के बिना तो रहा ही नहीं है जीव और भेदबुद्धि के बिना रहा ही नहीं है, मैं अलग और यह अलग।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान किसका है?

दादाश्री : दो चीज़ें हैं, अज्ञान और ज्ञान। ज्ञान अर्थात् आत्मा और अज्ञान अर्थात् अनात्मा। उस अज्ञान को अहंकार हुआ। उसी से यह सब खड़ा हो गया। इसलिए रात-दिन चिंता-परेशानी, अरे संसार में अच्छा न लगे तो भी पड़े रहना पड़ता है न? कहाँ जाएँ फिर? कहाँ जा सकते हैं? वहीं के वहीं। यानी यहाँ पलंग में सोए रहना है न, नींद नहीं आए फिर भी?

प्रश्नकर्ता : अहंकार की शुरुआत कैसे हुई, अहंकार कहाँ से उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : यह अहंकार, यही अज्ञान है न! अज्ञान था न, उसी से अहंकार हो गया। ऐसा है, यह अज्ञान और ज्ञान दो अलग चीज़ें हैं।

प्रश्नकर्ता : इन सभी रूट कॉज़ में संस्कारों का ढ़ेर पड़ा हुआ है, कितने ही जन्मों से?

दादाश्री : मूलतः अज्ञानता है। खुद को खुद की अज्ञानता है। उस रूट कॉज़ से यह सब उत्पन्न हो गया है। यदि वह अज्ञानता खुद सज्ञानता में आ जाए तो यह सब विलय हो जाता है। अज्ञानता इसका कारण है। अज्ञानता के कारण अहंकार उत्पन्न हुआ है। जब तक अज्ञान है तब

तक तू अहंकार स्वरूप है और 'ज्ञान' हो जाने के बाद खुद आत्मस्वरूप हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान जान लेते हैं तो अलग हो जाता है, ज्ञान नहीं जानते इसलिए साथ में रहता है?

दादाश्री : नहीं जानते तभी तक यह सारी झंझट है। अज्ञानता से ही यह सब दिखाई देता है। ज्ञान हो जाए तो ऐसा वैसा कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कल्पना किसने की?

दादाश्री : कल्पना अहंकार ने की। अहंकार उत्पन्न हो गया, 'मैं हूँ', 'मैं कुछ हूँ'।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* (अहंकार) जो करता है, उसके लिए आत्मा को क्यों भुगतना पड़ता है, वहाँ पाताल में जाकर?

दादाश्री : आत्मा की सहमति से करता है न!

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो अकर्ता है न?

दादाश्री : अहंकार कर्ता है न! और वह अहंकार फिर ऐसा मानता है कि, 'मैं हूँ'। इसलिए उसका जिम्मेदार हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार को *पुद्गल* में माना जाता है न? आत्मा को तो अहंकार होता ही नहीं है न?

दादाश्री : लेकिन अहंकार 'मैं हूँ' ऐसा मानता है इसलिए वह मिश्रचेतन हुआ।

अहंकार, वही है मिश्र चेतन

प्रश्नकर्ता : यानी कि अहंकार को मिश्र चेतन कहा गया है?

दादाश्री : हाँ, अहंकार, क्रोध-मान-माया-लोभ, ये जहाँ पर जीवंत हैं, सुलगता हुआ है, कर्ताभाव है। मान अर्थात् कर्ताभाव, उसमें सबकुछ आ गया, वह सारा मिश्र चेतन है।

प्रश्नकर्ता : उस मिश्र चेतन की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : मिश्र चेतन यानी कि जो चेतन नहीं है, जड़ है। है जड़ और चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। लक्षण भी दिखाई देते हैं और चारित्र भी वैसा ही दिखाई देता है। यानी कि वर्तन भी वैसा ही दिखाई देता है चेतन जैसा, लेकिन है जड़। मिश्र चेतन में यह बॉडी (देह) है, मन है, वाणी है। यह जो पूरा अंत:करण है, वह पूरा ही मिश्र चेतन है।

प्रश्नकर्ता : उस मिश्र चेतन के बारे में ज़रा और स्पष्टता कीजिए न?

दादाश्री : यह मिश्र चेतन कैसे उत्पन्न होता है, कि जब ज्ञान नहीं होता तब मनुष्य ऐसा ही कहता है न, कि, 'मैं चंदूभाई हूँ' और चंदूभाई के तौर पर बोला, है रियल और रिलेटिव है ऐसा कहता है, यानी कि वह भ्रांति से ऐसा कहता है। इसलिए वह इगोइज़म है। उसे अहंकार है। जहाँ पर खुद नहीं है, वहाँ पर *पोतापन* (मैं और मेरा ऐसा आरोपण, मेरापन) मानना, *पोतापन* का आरोपण करना, वही है (सूक्ष्मतम) अहंकार। उस मिश्र चेतन से कर्म बंधते हैं। उसके ऐसा कहते ही कि, 'मैंने यह किया', कर्म बंधन होता है। क्योंकि वह खुद कर्ता नहीं है। उसे ऐसा गलत आभास होता है। सिर्फ भास्यमान परिणाम है, उसी को वास्तविक परिणाम मानता है। *पुद्गल* में जो मैंपन मानता है, वह मिश्र चेतन है।

प्रश्नकर्ता : तो यह मिश्र चेतन किस स्वरूप में है?

दादाश्री : रोंग बिलीफ के रूप में है।

मिश्र चेतन या मन-वन सभी कुछ रोंग बिलीफें। रोंग बिलीफ फल देकर जाती है। पूरी रात अंदर घबराहट रहती है। वह फल देती है और फिर चली जाती है। इसी तरह से ये सारी रोंग बिलीफें फल देकर चली जाती हैं।

विशेष परिणाम से : क्रोध-मान-माया-लोभ

प्रश्नकर्ता : अहंकार, फिर क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, ये सारे अपने गुण दिखाते हैं न? तो इसमें चेतन जैसा कुछ होना चाहिए, इसके बिना कैसे दिखा सकता है? जड़ चीज़ तो दिखा नहीं सकती।

दादाश्री : लेकिन वह इस लट्टू जैसा चेतन है। लट्टू में जो चेतन दिखाई देता है न घूमता है तब, उसमें उसका (लट्टू का) कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो किसका है?

दादाश्री : वह तो, आत्मा के पास में आने से सामीप्य भाव से शक्ति उत्पन्न हुई है। खुद, अपने स्वरूप को नहीं जानता है इसलिए यह 'मैं हूँ' इस प्रकार उसकी कल्पना से सारी शक्तियाँ इसमें उत्पन्न हो जाती हैं। लेकिन विनाशी है यह। वह टिकती नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अहंकार ही आया न? आप इधर से उधर घुमाओ, वह अहंकार ही है न?

दादाश्री : अरे, वहाँ दूसरा कुछ है ही नहीं। यह जो विशेष भाव उत्पन्न होता है, वह है।

प्रश्नकर्ता : अपनी यह जो इवॉल्यूशन की थ्योरी है, जिसे इवॉल्यूशन कहते हैं वह सारा, विशेष भाव ही है न? यह जो कुछ भी प्रगति हो रही है, वह विशेष भाव की ही प्रगति है न? यह जो कुछ उत्क्रांति हुई, मनुष्य में आया, यह सब विभाव का ही हुआ है वह, विभाव से ही है न?

दादाश्री : यह सब विभाव ही है न! विभाव की वजह से यह सब है। जो है वह विभाव से है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का तो कुछ है ही नहीं?

दादाश्री : आत्मा की तो अभी शक्ति ही नहीं है न! जब तक देह साथ में है, तब तक उसकी उपस्थिति से उत्पन्न हो गया सब। उपस्थिति से ही ये गुण उत्पन्न हो गए। आत्मा की उपस्थिति तो है। समुद्र की उपस्थिति नहीं हो तो क्या लोहे पर ज़ंग लग सकता है? यानी कि आत्मा की उपस्थिति है तो यह सब उत्पन्न हुआ है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था कि जो अहंकार पैदा होता है वह भी आत्मा की उपस्थिति से ही उत्पन्न होता है न?

दादाश्री : हाँ, सही है। शरीर में आत्मा हो तभी अहंकार उत्पन्न होता है। जो मर गया है, उसे अहंकार नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा में मूल अहंकार किस प्रकार से आया, यह समझ में नहीं आता।

दादाश्री : हाँ ऐसा है, इन छः वस्तुओं से जगत् बना है। छः परमानेन्ट वस्तुओं से, सनातन वस्तुओं से। ये वस्तुएँ एक-दूसरे में मिलती हैं, मिक्स्चर हो जाता है लेकिन कम्पाउन्ड रूप नहीं होता। किसी के भी अपने गुणधर्म नहीं बदलते। कम्पाउन्ड हो गया यानी कि मैंने आपका उधार लिया और मेरा आपने उधार लिया, ऐसा हो जाता है। सिर्फ मिलती हैं और अलग हो जाती हैं और ये छहों चीज़ें परिवर्तनशील हैं। इसलिए निरंतर परिवर्तित होती ही रहती है। परमाणु-वरमाणु इन सब में परिवर्तन होते होते अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं।

यह मूल तत्त्व, वस्तु वह अवस्था नहीं है, अविनाशी है। उससे जो अवस्थाएँ उत्पन्न हुईं वे सब

विनाशी हैं। घड़ी भर में ये अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं और घड़ी भर में अवस्थाएँ लय हो जाती हैं।

अब अहंकार किस तरह से उत्पन्न हुआ? तो कहते हैं, आत्मा और यह जड़ *पुद्गल* परमाणु, दोनों साथ में आए, इस तरह परिवर्तित होते-होते दोनों नज़दीक आ गए और क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हो गए।

ये क्रोध और मान, दोनों की वजह से 'मैं' उत्पन्न हुआ और कपट और लोभ से 'मेरा' उत्पन्न हो गया। ऐसा होने से कहीं आत्मा में बदलाव नहीं आया, आत्मा वैसे का वैसा ही रहा है। वस्तु खुद के स्वभाव में ही है। यह तो दो चीज़ें साथ में हैं, सिर्फ तब तक। लेकिन ये दोनों अलग हो जाएँ तो कुछ भी नहीं रहेगा। इन दो चीज़ों के अलग होने से पहले ही, उसे ज्ञानी मिल जाते हैं और ज्ञानी से ज्ञान मिल जाता है इसलिए अलग है, ऐसा भान हो जाता है। उसके बाद ये अलग हो जाते हैं। ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये विशेष गुण कब तक रहते हैं? स्वरूप की अज्ञानता खत्म होते ही तुरंत विशेष गुण खत्म हो जाते हैं। स्वरूप की अज्ञानता कहाँ खत्म होती है? 'ज्ञानी पुरुष' के पास।

प्रश्नकर्ता : यह जो पूरा अंत:करण उत्पन्न हो गया है वह और विशेष परिणाम, इन दोनों में क्या संबंध है?

दादाश्री : विशेष परिणाम से क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हो जाते हैं और फिर अंत:करण उत्पन्न हो गया है।

प्रश्नकर्ता : विशेष परिणाम में अहम् उत्पन्न होता है ऐसा आपने कहा है और अंत:करण में मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, यह अहंकार और वह, दोनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : वही सब है। एक ही चीज़ है। ये सारे विशेष परिणाम। विशेष परिणाम में वास्तव में क्रोध-मान-माया-लोभ चार ही होते हैं। उन्हीं में से यह सारी वंशावली है! यानी क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हो जाते हैं। उसी से यह सबकुछ दिखाई देता है। संसार खड़ा हो जाता है फिर। खुद का मानना-वानना सबकुछ इसी से उत्पन्न होता है। अंत:करण-वंत:करण सबकुछ इसी में से उत्पन्न हो गया और मन तो अहंकार ने उत्पन्न किया है। यह अहंकार की वंशावली है, उसके वारिस!

अहंकार के विशेष स्वरूपों का स्पष्टीकरण

लोग अहंकार को समझते ही नहीं है। अहंकार किसे कहा जाता है? जहाँ पर खुद नहीं है वहाँ पर *पोतापन* की स्थापना करना, इतने ही भाग को अहंकार कहा जाता है। जहाँ 'मैं' नहीं हूँ वहाँ पर 'मैं' हूँ ऐसा मानना वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : अहम् का मतलब ही अहंकार है, ऐसा मानते थे।

दादाश्री : नहीं, अहंकार और अहम् में बहुत अंतर है।

प्रश्नकर्ता : उनमें भी अंतर है? उनमें क्या अंतर है, उस सूक्ष्मता की स्पष्टता कीजिए न!

दादाश्री : 'मैं'पन वह अहम् है और मैं'पन का प्रस्ताव करना, वह अहंकार है। 'मैं प्रेसिडेन्ट हूँ' उसे अहंकार नहीं कहा जाता। वह तो लोग ऐसा कहते हैं कि यह अहंकारी पुरुष है, लेकिन वास्तव में उसे मानी पुरुष कहा जाएगा। अहंकार तो, संसार की कोई चीज़ वगैरह स्पर्श नहीं करती और जहाँ पर खुद नहीं है वहाँ पर खुद ऐसा मानता है कि 'मैं हूँ' तो वह अहंकार में आता है। वस्तु में कुछ भी नहीं होता और किसी दूसरी

चीज़ को स्पर्श करे तो वह मान कहलाता है। मैं प्रेसिडेन्ट हूँ, ऐसा सब दिखाए तो हम समझ जाते हैं न कि यह मानी है।

प्रश्नकर्ता : प्रस्ताव में क्या आता है?

दादाश्री : ज़रूरत से ज़्यादा 'मैं'पन बोलना। वह 'मैं' तो है ही, वह अहम् तो है ही मन में, लेकिन उसका प्रस्ताव करना, 'यह सही है और यह गलत है' ऐसा बाहर बोलने जाता है, वह अहंकार कहलाता है। लेकिन अन्य कोई चीज़ नहीं होती, मालिकीपन नहीं होता किसी चीज़ में। मालिकीपन आ जाए तब मान आता है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार का उदाहरण?

दादाश्री : अहंकार के तो ये सारे उदाहरण हैं न! अहम् का प्रदर्शन करना, प्रस्ताव करना वह अहंकार है। अहम् तो है ही अंदर और मालिकी वाला है तो वह मान हुआ। और फिर सिर्फ मान ही नहीं, फिर जैसे-जैसे मालिकीभाव बढ़ गया न, तो वह है अभिमान। देहधारी हो तो उसे मानी कहा जाता है और 'यह फ्लेट हमारा, यह हमारा' उसे अभिमान कहते हैं। अत: अहंकार से भी आगे बढ़कर मानी, अभिमानी, ऐसे बहुत तरह के हैं।

अहंकार या मान?

प्रश्नकर्ता : हम किसी के घर पर जाएँ और वह हमें भाव से 'आइए, बैठिए', ऐसा नहीं कहे तो यह उसका अहंकार कहा जाएगा या मान कहा जाएगा?

दादाश्री : उसे अवहेलना कहा जाएगा। उसकी आपके प्रति अवहेलना कही जाएगी। अपना अहंकार आहत होता रहता है। बुरा लगा वह अपना अहंकार ही है न! उसने अवहेलना की इसलिए उसे गुनाह लगेगा। और यदि बुरा लगता है तो आप पर भी गुनाह लागू होगा।

प्रश्नकर्ता : इगोइज़म (अहंकार) को पहचाने किस प्रकार से?

दादाश्री : इगोइज़म तो सभी पहचान जाते हैं, अभी अपमान हो जाए न तो तुरंत पहचाना जाएगा या नहीं? 'आप में अक्ल नहीं है' कहते ही डिप्रेशन किसे आता है? इगोइज़म को आता है न? वह इगोइज़म तो बार-बार समझ में आता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह क्लियर (स्पष्ट) नहीं हो रहा, उसमें उलझन होती रहती है।

दादाश्री : नहीं, क्लियर ही है, इसमें तो। बात-बात में आपको 'उठ यहाँ से', ऐसा कहे, तब भी आपका इगोइज़म तुरंत जाग्रत हो जाएगा। इगोइज़म तो बार-बार दिन भर उपयोग होता ही रहता है। लोग भी समझ जाते हैं कि मेरा इगोइज़म बहुत भारी है। इसमें 'इगोइज़म भारी है', ऐसा जानकार कौन है? तो कहते हैं कि, वही इगोइज़म है।

सिर्फ अहंकार से ही जीवित रहता है। 'हमारे जैसा कोई नहीं है, हमारे जैसा कोई नहीं है, इससे मैं बड़ा हूँ, इससे मैं बड़ा हूँ', बस!

व्यक्ति चाहे कितना भी नालायक हो, अंतिम दर्जे का हो तब भी 'वह' *ऊपरी* तो है ही। इसलिए फिर उसे क्या झंझट है? ये आदिवासी भी क्या कहते हैं? मैं इन चार गायों का मालिक हूँ। लो, फिर उसे क्या दु:ख? अत: अहंकार से यह सब पैदा करता है और अहंकार से ही, 'मैं इन चार गायों का मालिक हूँ, मैं इन पाँच सौ भेड़ों का मालिक हूँ' और लोग भी ऐसा कहते हैं कि, 'मैं इसका मालिक हूँ'। अत: मनुष्यपन जो है वह पूरा अहंकार से घिरा हुआ है।

अहंकार काटता था दिन-रात

हमारी बुद्धि ज़रा ज़्यादा ही उछल-कूद

करती थी और अहंकार भी बहुत उछल-कूद करता था। यानी मन में तो ऐसा गुमान कि जैसे इस दुनिया में सिर्फ 'मैं ही हूँ, दूसरा कोई है ही नहीं'! देखिए, खुद को ना जाने क्या समझ बैठे थे! मिल्कियत में कुछ भी नहीं था। दस बीघा ज़मीन और एक मकान, उसके अलावा और कुछ नहीं था। लेकिन मन में रौब ऐसा कि मानो चरोतर के राजा हों! क्योंकि आसपास के छः गाँवों के लोगों ने हमें बहकाया था। दहेजिया दुल्हा, जितना माँगे उतना दहेज मिले तब दुल्हा ब्याहने पर राज़ी होता। दिमाग़ में उसका अहंकार रहता था। कुछ पूर्वभव की कमाई करके लाया था, इसलिए ऐसा गर्व था!

लेकिन मेरे बड़े भैया तो ज़बरदस्त गर्व में रहते थे। फिर भी वे मुझे क्या कहते थे? कि 'मैंने तेरे जैसा अहंकारी और कोई नहीं देखा'! अरे, मैं तो आपसे भड़कता हूँ। फिर भी अकेले में कहा करते कि, 'मैंने तेरे जैसा अहंकार और कहीं नहीं देखा'! और वास्तव में वह अहंकार बाद में मेरी दृष्टि में आया। वह अहंकार जब मुझे काटता था तब मालूम हुआ कि बड़े भैया जो बताते थे, वह यही अहंकार है सारा! 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए था' यानी लोभ नाम मात्र को नहीं ऐसा अहंकार! एक बाल बराबर भी लोभ नहीं। अतः अब वह मान कैसा होगा? यदि मान और लोभ विभाजित हुए होते तो मान थोड़ा कम हुआ ही होता...

मन में माना हुआ मान

अपने बड़े भैया को मैं 'मानी' कहा करता था, तब वे मुझे मानी कहते थे। फिर वे एक दिन मुझे क्या कहने लगे? ''तेरे जैसा 'मानी' मैंने नहीं देखा।'' मैंने पूछा, 'कहाँ पर आपको मेरा मान नज़र आया?' तब कहने लगे, 'हर बात को लेकर तेरा मान होता है'।

और उसके बाद मैंने जाँच की, तो सभी बाबत में मेरा मान दिखाई दिया और वही मुझे काटता था। मान कैसे पैदा हो गया था? कि सब लोग, 'अंबालाल भाई, अंबालाल भाई'! कहा करते थे! अब अंबालाल तो कोई कहता ही नहीं था न! छः अक्षर से पुकारें। और फिर आदत हो गई थी, 'हेबिचूएटेड' हो गए थे उससे। अब मान इतना भारी था तो उसका रक्षण भी करेंगे न! तो कभी 'अंबालाल भाई' के छः अक्षर नहीं बोल पाए और कोई जल्दी में 'अंबालाल' बोल दे, उसमें उसका कोई गुनाह है? छः अक्षर एक साथ जल्दी में कैसे बोल सकता है कोई?

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप ऐसी आशा रखते थे न?

दादाश्री : अरे, मेरा तो फिर मोल-तौल शुरू हो जाता था कि ''इसने मुझे 'अंबालाल' कहा? क्या समझता है? क्या, उससे 'अंबालाल भाई' नहीं बोला जाता?'' गाँव में दस-बारह बीघा ज़मीन है और कुछ रौब जमाने जैसा नहीं है फिर भी मन में क्या मान बैठे थे? हम छः गाँव वाले, पटेल, दहेज वाले!

अब यदि सामने वाला 'अंबालाल भाई' नहीं कहता, तब मेरी सारी रात नींद हराम हो जाती, बैचेन रहता हूँ। लीजिए! उससे क्या प्राप्ति होने वाली थी? उससे मुँह कुछ थोड़े ही मीठा हो जाता है? मनुष्य को कैसा स्वार्थ रहता है! ऐसा स्वार्थ, जिसमें कुछ स्वाद भी नहीं आता हो। फिर भी मान लिया था, वह भी लोकसंज्ञा से! लोगों ने बड़ा बनाया और लोगों ने बड़प्पन की मान्यता भी दी! लेकिन ऐसा लोगों का माना हुआ किस काम का?

ये गायें-भैंसें हमारी ओर दृष्टि करें और सभी गायें हमें देखती रहें और फिर कान हिलाए तो

क्या हम ऐसा समझें कि वे हमारा सम्मान करती हैं, ऐसे? ये सब उसके समान हैं। हम अपने मन से मान लें कि ये सब लोग सम्मान से देख रहें है, मन की मान्यता! वे तो सारे अपने-अपने दुःख में डूबे हुए हैं बेचारे, सभी अपनी-अपनी चिंता में हैं। वे क्या आपके लिए बैठे हैं? फालतू बैठे हैं? सभी अपनी-अपनी चिंताएँ लिए घूम रहे हैं!

ये सब मान के लिए ही

मुझ में अहंकार बहुत ज़्यादा था। लोभ मुझ में नाम मात्र को भी नहीं था, इसलिए लोगों की मैं हेल्प करता रहता था और हेल्प करने से लोग मुझे मान देते थे और मान से मैं वापस पुष्ट होता रहता था।

ज्ञान हुआ उससे पहले मैंने लोगों से कहा था, 'आपका काम करवा जाना मुझसे, जो कुछ भी हो, वह। सलाह मशवरा, और कुछ भी हो! मेरे पास पैसे होंगे तो वे भी दूँगा, लेकिन आपका काम करूँगा। आपको मेरा काम नहीं करना है'। क्योंकि आपको मेरा काम करने को मना करूँ न, तो आपको मेरी तरफ से भय नहीं रहेगा।

आज से पैंतालीस साल पहले कहाँ लोग बंगले में रहते थे? मामा की पोल बहुत उत्तम मानी जाती थी। उन दिनों हम मामा की पोल में रहते थे और पंद्रह रुपये किराया। उन दिनों लोग सात रुपये के किराए में पड़े रहते थे, हम पंद्रह रुपये में। यों बड़े कॉन्ट्रैक्टर कहलाते थे। अब वहाँ मामा की पोल में बंगले में रहने वाले आते थे मोटर लेकर क्योंकि परेशानी में फँसे हुए होते थे, वे यहाँ पर आते थे। तो उल्टा-सीधा करके आए होते थे न, तब भी उन्हें 'पिछले दरवाज़े' से निकाल देता था। 'पिछला दरवाज़ा' दिखाता था कि यहाँ से निकल जाओ। अब गुनाह उसने किया और 'पिछले दरवाज़े' से मैं छुड़वा देता था। यानी गुनाह मेरे सिर पर लिया। किसलिए? मान खाने के लिए! 'पिछले दरवाज़े' से निकाल देना, क्या वह गुनाह नहीं है? यों फिर अक्ल लगाकर दिखाता था, उससे फिर वे बच जाते थे इसलिए फिर वे हमें मान सहित रखते, लेकिन गुनाह हमें लगता था। फिर समझ में आया कि बेभानपने में ये सभी गुनाह हो जाते हैं, मान खाने के लिए। फिर मान पकड़ में आया। बहुत चिंता होती थी मान की!

यह मान ही था कि 'मैं कुछ हूँ'। सभी लोगों से बढ़कर 'मैं कुछ हूँ', वह सब गलत था। कुछ भी नहीं मिलता, कोई बरकत ही नहीं, मान बैठे थे उतना ही।

अहंकार-मान दुःखदायी हो गए

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'ज्ञान' से पहले भी यह जागृति तो थी न, कि यह अहंकार है ऐसा?

दादाश्री : हाँ, यह जागृति तो थी। अहंकार है यह भी मालूम था, लेकिन वह पसंद था। फिर उसने जब बहुत काटा तब पता चला कि यह हमारा मित्र नहीं हो सकता, यह तो हमारा दुश्मन है, इसमें कोई मज़ा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह अहंकार कब से दुश्मन लगने लगा?

दादाश्री : रात को नींद नहीं आने देता था, इसलिए समझ गया कि यह किस प्रकार का अहंकार है! इसलिए तो एक रात पुड़िया बनाकर सुबह जाकर उसे विश्वामित्री में बहा आया! और क्या करता?

प्रश्नकर्ता : यानी पुड़िया में क्या रखा?

दादाश्री : यह सारा अहंकार! जाने दो न! किसकी खातिर यह सब? बिना वजह के, न कुछ लेना, न देना! लोग कहते थे कि 'अपार सुखिया

है' और मुझे तो कहीं सुख का छींटा भी नज़र नहीं आता था! भीतर अहंकार की अपार चिंता-परेशानियाँ होती रहती थी न!

प्रश्नकर्ता : इस अहंकार को छोड़ने का मन कब से हुआ? वह पागल अहंकार आपने कब से छोड़ दिया?

दादाश्री : यह छोड़ने से नहीं छूटता। अहंकार छूटता है कहीं? वह तो सूरत के स्टेशन पर यह ज्ञान प्रकट हो गया और वह अपने आप छूट गया। बाकी, छोड़ने से छूटता नहीं है। छोड़ने वाला कौन? अहंकार के राज्य में छोड़ने वाला कौन? जहाँ राजा ही अहंकार हो, उसे छोड़ेगा कौन? अहंकार के 'बेसमेन्ट' (आधार) पर पड़े हुए थे। ममता की कुछ नहीं पड़ी थी। अहंकार के रौब में ही घूमते रहते थे। मान-तान में ही पड़े रहते थे।

हमारा तो बहुत अच्छा गुण था कि अहंकारी! मान दिया कि खुश! और कुछ भी नहीं चाहिए था, कोई चीज़ नहीं चाहिए थी। भूखे बैठाए रखो तो बैठे रहेंगे लेकिन आप यह 'आइए, बैठिए, कैसे हो वगैरह?' मान दो तो बैठे रहेंगे, वही रोग!

प्रश्नकर्ता : आपने मान को पकड़ा, फिर मान को कैसे मारा?

दादाश्री : मान मरता नहीं है। मान को यों उपशम किया। बाकी, मान मरता नहीं है। क्योंकि मारने वाला खुद ही है, किसे मारेगा? खुद अपने आपको कैसे मार सकता है? अर्थात् उपशम किया और जैसे-तैसे दिन बिताए।

मन बड़ा होता है वाह-वाही के भोजन से

मुझसे धर्म में पैसे खर्च नहीं होते थे और जहाँ वाह-वाही होती वहाँ पाँच लाख दे देता। यह मान की गाँठ कहलाती है। वाह-वाह, वाह-वाह! अरे! एक दिन तक 'रहा या न भी रहा'। कुछ भी नहीं। लेकिन नहीं, वह अच्छा लगता था। टेस्ट आता था। मैंने भी पता किया, कि मन बड़ा है फिर भी ऐसा कंजूस क्यों हो जाता है? लेकिन वाह-वाही में मन बड़ा था। पता लगाना चाहिए न, कि अपना मन कैसा है?

यह मन की गाँठ कैसी है? न हो वहाँ तक झंझट नहीं है और बीस लाख आएँ तो उन्नीस लाख लिखता है। पूरे बीस नहीं लेकिन उन्नीस, किसलिए? वह भाई कहेंगे, 'ज़रा तो सोचो', तब कहेगा, 'ले, ये लाख रहने दिए'!

प्रश्नकर्ता : दादा, वह मान की गाँठ कहलाएगी न?

दादाश्री : हाँ, मान की गाँठ! वह मान की गाँठ, जहाँ वाह-वाही हो वहाँ पर देता है, धर्म के लिए नहीं देता है।

पहचानी अपमान की जगह

हमारे भतीजे हैं, उनके वहाँ शादी हो तो, क्योंकि वे भतीजे होते हैं न, इसलिए वे चाचा को आगे बैठाते, बीच में। मतलब, चाचा का दूसरा, तीसरा नंबर तो होता ही था और चाचा बैठते भी थे। फिर झवेरचंद लक्ष्मीचंद आते। तब, 'आइए, आइए, पधारिए' कहते। तब उन्हें बीच में बैठाकर हमें खिसक जाना होता था। इस तरह से खिसक-खिसककर आठवें नंबर पर पहुँचते। मैंने कहा, यह तो अपमान की जगह हो गई, यह मान की जगह नहीं है! फिर तो मैं जब भी जाता था न, तब आगे की जगह का ध्यान नहीं रखता था। वे लोग ढूँढते थे कि 'चाचा कहाँ गए? चाचा कहाँ गए?' और चाचा उस तरफ चाय पीते रहते थे। सभी (लोग) आते तब फिर आकर दूर बैठकर देखता रहता था। हम चाय पीते जाते और कौन सा घोड़ा पहला आता है, वह देखते रहते थे।

तब हमारे भतीजे कहते, 'चाचा यहाँ नहीं बैठते हो तो खराब लगता है न'! मैंने कहा, 'भाई, यह रेसकोर्स मुझे पसंद नहीं आता, मुझसे दौड़ा नहीं जाता। मेरी कमर टूट गई है इसलिए दौड़ा नहीं जाता'। तब कहता, 'इसे तो आपकी शरारत कहेंगे, ऐसा मज़ाक करना तो मुझे भी आता है'। मैंने कहा, 'मेरा तो जो है वह ऐसा ही है'। ऐसे खिसक-खिसक कर सात फेरे तक फाउन्डेशन के साथ खींचना होता! इसलिए फिर देखने की आदत हो गई। वहाँ शादी में जाने पर तो देखने की, ज्ञाता-द्रष्टा रहने की आदत हो गई थी। तब ज्ञान नहीं हुआ था। ऐसे ही ज्ञाता-द्रष्टा, व्यवहारिक ज्ञाता-द्रष्टा!

मान खाते हुए ठगा जाता है

हमारे घर तो चार-चार गाड़ियाँ खड़ी रहती थी। क्योंकि ऐसा कौन परोपकारी व्यक्ति मिलता? 'आइए अंबालाल भाई' कहा कि बस, हो गया! ऐसे भोले व्यक्ति कहाँ मिलते? और कुछ चाय-नाश्ता नहीं कराओगे तो भी चलेगा। लेकिन 'आइए, पधारिए' कहा कि बस, बहुत हो गया! खाना नहीं खिलाएँगे तो भी चलेगा, दो दिन भूखा रहूँगा। पर तेरी गाड़ी में मुझे अगली सीट पर बैठाना, पीछे नहीं। तब वे लोग आगे की सीट खाली ही रखते थे। अब ऐसा करने वाला कौन मिलेगा?

मानी बेचारे भोले होते हैं। एक मान के लिए बेचारे हर प्रकार से धोखा खाते हैं। रात को बारह बजे कोई घर आकर पूछे कि, 'अंबालाल भाई साहब, हैं क्या?' 'भाई साहब' कहा कि बहुत हो गया। यानी अन्य लोग मानी से इस तरह लाभ उठाते हैं! लेकिन मानी का क्या फायदा कर देते हैं कि मानी को इतना ऊपर चढ़ाकर फिर उसे गिराते हैं कि फिर वह सारा मान भूल जाता है। ऊपर चढ़ने के बाद नीचे गिरते हैं न? वे हमें रोज़ 'अंबालाल भाई' कहते थे और कभी यदि 'अंबालाल' कह दें तो कड़वा ज़हर जैसा लगता था! इस मान के कारण ही सारी उलझनें हैं।

अहंकार के पर्याय...

अहंकार अर्थात् क्या? भगवान से दूर भागना वह। जैसे-जैसे अहंकार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन), मान, गर्व, घमंड आदि शब्दों का उपयोग होता है। भगवान से ज़रा सा दूर हुआ तभी से अहंकार जाग जाता है।

लोग जिसे अहंकार समझते हैं, उसे अहंकार नहीं कहा जाता। लोग जिसे अहंकार कहते हैं न, वह तो मान है। अहंकार बिलीफ (मान्यता) में होता है, ज्ञान में नहीं होता। ज्ञान में आ जाए तो वह मान कहलाता है। खुद नहीं करता है, वहाँ पर 'मैं खुद करता हूँ', ऐसा मानता है। उसे अहंकार कहते हैं। ज्ञान में तो 'मैं' पद आया कि वह मान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अब उसका एक उदाहरण देकर समझाइए।

दादाश्री : अपने यहाँ कहते हैं न कि, 'मैं नीचे आया, ऊपर से नीचे आया'। अब वह खुद आया ही नहीं है, वह तो यह शरीर आया है। यह शरीर आया है, उसे खुद ऐसा मानता है कि, 'मैं आया'। ऐसी मान्यता ही अहंकार है और फिर वह बोलता भी है कि 'मैं आया', वह मान कहा जाता है। जबकि लोग 'मैं आया', उसे अहंकार कहते हैं।

फिर वह कहता है कि 'यह प्लोट मेरा, यह मकान मेरा है' वह अभिमान कहलाता है। उसे मान भी नहीं कहा जा सकता, वह अभिमान है। 'यह मेरी बेटी है, यह मेरा बेटा है' वह अभिमान है और फिर वह क्या कहता है? 'मैं

कभी भी अभिमान नहीं करता'! तो भाई, यही अभिमान है, और कौन सा अभिमान? लेकिन भान ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : अभिमान और गर्व दोनों नज़दीकी कहलाते हैं?

दादाश्री : बहुत अंतर है। गर्व तो किसे कहते हैं कि 'यह मैंने कितना अच्छा किया है!' मैं यह समझता हूँ, कुछ करने का गर्व होता है। वकील आकर कहता है कि, 'मैंने तुझे किस तरह से जीता दिया, वह मैं ही जानता हूँ। तुझ में अक्ल नहीं है न'! इसे गर्वरस लिया कहते हैं, वह अभिमान नहीं कहलाता। अहंकार मूल चीज़ है। उसमें से मान, अभिमान, और फिर *घेमराजी,* तुंडमिजाजी, घमंड, तरह-तरह के बहुत से नाम रखे हुए हैं।

मान के पर्याय

इन सभी (मान) शब्दों के पर्याय बहुत बड़े हैं। पर्याय समझना बहुत मुश्किल चीज़ है। वे तो 'ज्ञानी पुरुष' से जानने को मिलते हैं। मानी अलग, अभिमानी अलग। अहंकारी अलग, तुंडमिज़ाजी अलग, *घेमराजी* (खुद के सामने दूसरों को तुच्छ समझना) अलग! इस मान के शब्द तो बहुत सारे पर्यायों में हैं, इतने सारे पयार्य हैं।

प्रश्नकर्ता : तुंडमिज़ाजी, *घेमराजी* कैसे होते हैं?

दादाश्री : तुंडमिज़ाज! नाम मात्र की समझ नहीं, ना ही लक्ष्मी का ठिकाना, तब भी बेहद मिजाज़। शादी करने को नहीं मिल रही हो फिर भी मिज़ाज! अरे, शादी करने को नहीं मिल रही फिर भी किस चीज़ का मिज़ाज करता रहता है वह? वह तुंडमिज़ाज कहलाता है न, फिर।

और फिर तुमाखी वाला। वह आज से पचहतर साल पहले कलेक्टर, पुलिस, डी.एस.पी.ओ, उन सभी की तुमाखी थी। जैसे भगवान ही हो इतनी तुमाखी रखते थे! बड़े-बड़े सेठों को मारते-पीटते थे। हंटर से मारते थे। कैसी तुमाखी! लोगों को दुतकार-दुतकार कर रख देते थे। क्योंकि पावर है न, उनके पास।

घेमराजी यानी यहाँ से तीन मील दूर तक भी न जा पाए, ऐसा शरीर हो, और फिर कहेगा 'पूरी दुनिया घूम आऊँ'। 'दिमाग़ में *घेमराजी* रखकर घूमता रहता है, बस इतना ही है।' *घेमराजी* यानी क्या? सभी को 'हट, हट' करते रहते हैं। यानी वह दूसरे लोगों को कुछ समझता ही नहीं। मनुष्य भी जानवर जैसे लगते हैं। बोलो अब, यह *घेमराजी!*

गलत अहंकार से सुख नहीं मिलता। अहंकार नॉर्मल होना चाहिए। लोगों को ठीक लगे, ऐसा होना चाहिए।

सामने वाले को पूरा तोड़ दे, ऐसा अहंकार नहीं होना चाहिए। अहंकार यानी पागल दिखाई दे, ऐसा करना।

पागल अहंकार का स्वरूप

जिसे लोग एक्सेप्ट (स्वीकार) नहीं करते और अहंकार खुद 'मैं कुछ हूँ' ऐसा मान बैठा हो, वह पागल अहंकार कहलाता है, कुरूप अहंकार कहलाता है। चक्रवर्ती में अहंकार होता है, लेकिन जैसा मोड़ो वैसे मुड़ सकता है। लोग उस अहंकार को मान्य करते हैं, वह सयाना अहंकार कहलाता है और यह तो पूरा पागल ही! इस पागल अहंकार से हम पूछें कि, 'आप कौन से कोने में शांति से सोए पड़े थे? ऐसा दुनिया में कौन है कि जो आपसे कहे कि, 'आओ, आओ, आपके बिना तो अच्छा नहीं लगता'! लेकिन इसे तो लोग कहेंगे कि, 'आपसे तो, पहले जो उजाला था, वह भी अंधेरा हो गया है'। ऐसे अपमान खाए

हैं! अपमान का अंत ही नहीं आए इतने अपमान हुए हैं! इस अहंकार का क्या करना है? यह तो कुरूप अहंकार है, इसका क्या रक्षण करना? इसका क्या पक्ष लेना?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह पागल अहंकार है ऐसा कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : जो दुःख दे वह सारा अहंकार पागल है। पागल अहंकार सभी में होता है और उसे मस्ती में भटकाता है। उसे पहचान लेना है।

अपने में 'वंक जडाय पछीमां' की झंझट नहीं है लेकिन अहंकार के दखल पर *लक्ष* (जागृति) रहना चाहिए। पागल अहंकार रहता ही है। उस पर *लक्ष* रखना पड़ता है। वह इतना छोटा सा होकर बैठा रहता है तो कल उसे बढ़ने में भी देर नहीं लगेगी। जड़-मूल से उखाड़ देना चाहिए तो काम निकल जाएगा।

पागल अहंकार तो बहुत खराब काम करता है। कुछ भी समझने ही नहीं देता। उल्टा ही करता रहता है। फाइलों के दोष देखे और खुद को साफ-सुथरा ही देखता है कि मैं तो बहुत सयाना हूँ, खुद के दोषों का बचाव किया। खुद अपने आप से कहता है कि, 'नहीं, आपका दोष नहीं है। यानी खुद ही अपना बचाव कर लेता है। खुद आरोपी हो, खुद वकील हो और खुद ही जज हो तो कैसा जजमेन्ट (फैसला) आएगा? और इसमें तो सामने वाले को गुनहगार देखा और खुद का बचाव किया!

अहंकार तो सुंदर होना चाहिए, लोगों को पसंद आए वैसा होना चाहिए, मोड़ो वैसे मुड़ जाए ऐसा। इस अहंकार से पूछें कि, 'आपका बहीखाता दिखाओ कि आपको कहाँ पर मान मिला है? कहाँ-कहाँ अपमान मिले हैं? किस-किस तरह का सुख दिया? लोगों में आपकी कहाँ-कहाँ कीमत थी?' भाई के पास, बाप के पास यदि कीमत देखने जाएँ न तो चार आने भी कीमत नहीं होती!

इस अहंकार ने तो सबकुछ बिगाड़ दिया है! पागल अहंकार में तो अधीन रहने की शक्ति नहीं होती, इसलिए तीस दिन तक अधीन रहता है और इकत्तीसवें दिन फेंक देता है यानी ये वृत्तियाँ कब आगे-पीछे हो जाएँ, वह कहा नहीं जा सकता। जितना अहंकार का रोग भारी उतनी ही मुश्किलें अधिक। अधीनता के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं है न! ज्ञानी के अधीन रहें तो हल आ जाएगा। सयाना हुआ अहंकार खुद की होशियारी नहीं लगाता! जबकि पागल अहंकार तो कुरेदता है! इसलिए या तो बात को समझना पड़ेगा या फिर ज्ञानी के अधीन रहना पड़ेगा!

सच्चेपन का अहंकार

अहंकार हमेशा खुद का खराब न दिखे, ऐसा काम करता है। यह तो खुद का 'इगोइज़म' है कि 'यह मेरा सही है और दूसरे का गलत है'। व्यवहार में जो 'सही-गलत' बोला जाता है वह सब 'इगोइज़म' है। फिर भी व्यवहार में कौन-सा सही या गलत? जो मनुष्यों को या किसी जीव को नुकसानदायक चीज़ें हैं, उन्हें हम गलत कहते हैं। व्यवहार को नुकसानदायक है, सामाजिक नुकसानदायक है, उन सबको हम गलत कह सकते हैं। दूसरा कुछ 'सही-गलत' होता ही नहीं है, दूसरा सब 'करेक्ट' (सही) ही है। फिर हर किसी का ड्रॉइंग (चित्रण) अलग ही होता है। वह सब ड्रॉइंग कल्पित है, सच्चा नहीं है। एक बार समझ लेने की ज़रूरत है कि यह ड्रॉइंग कैसा है! वह सारा ड्रॉइंग समझ लें न, तो फिर हमारी उस पर से प्रीति उठ जाएगी।

अब, सही बात पकड़कर रखना, वह झूठ है। सत्य की पूँछ पकड़ना, वह असत्य ही है और

असत्य को भी छोड़ दे, वह सत्य है। पकड़कर रखा कि सब बिगड़ गया। तो इन लोगों ने सत्य की पूँछ पकड़ रखी है और मार खाते रहते हैं।

सच्चा व्यक्ति 'मैं सच्चा हूँ', ऐसा करके सब को बहुत दुःख देता है। इसलिए उसे दुःख ही मिलता है। यह 'ज्ञान' मिलने के बाद भी अगर ऐसा रहे तो उसे भगवान ने 'अहंकार' कहा है। इस अहंकार को निकालना पड़ेगा।

'कुछ हूँ', 'होशियार हूँ' का रोग

यह अहंकार तो क्रोनिक रोग कहलाता है। वह तो हमारे पास रहोगे तो निकलेगा, वर्ना लोग तो बल्कि बढ़ा देते हैं, वह रोग!

कोई कहे कि, 'इन चंदूभाई में अक्ल नहीं है', तो आपको कोई असर होता है?

प्रश्नकर्ता : होगा तो सही न।

दादाश्री : क्यों? अक्ल के बोरे हो आप?

प्रश्नकर्ता : नहीं हैं इसीलिए होता है।

दादाश्री : और कोई कहे कि ये चंदूभाई कहाँ के कलेक्टर हैं? तब आप ऐसा कहोगे कि मैं कलेक्टर हूँ?

प्रश्नकर्ता : नहीं हैं तो कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : तब फिर, इसका असर नहीं होता कलेक्टर कहने से और इसका असर क्यों हो जाता है? आप अंदर मान बैठे हो कि 'मैं कुछ हूँ, अक्ल वाला हूँ'!

प्रश्नकर्ता : उससे अहंकार आहत होता है।

दादाश्री : अंदर अहंकार आहत हो जाता है न, 'मैं कुछ अक्ल वाला हूँ'। अक्ल का बोरा बाज़ार में बेचने जाएँ तो चार आने भी न मिलें। कोई लेगा नहीं क्योंकि सभी अक्ल के बोरे हैं, कौन लेगा? आपको कोई कुछ कह जाए तो तुरंत ऐसा लगता है कि 'मैं कुछ हूँ'। 'मैं तो पहले से ही अक्ल वाला हूँ', ऐसा मानते हैं। क्या कहते हो? आप ऐसा मानते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही है। पहले से ही खुद ऐसा मानता है कि 'मैं अक्ल वाला हूँ, ऐसा सब ही हूँ। मुझे कोई क्या कह सकता है?'

दादाश्री : ऐसा तो कभी-कभी ही होता है न?

प्रश्नकर्ता : दादा का यह ज्ञान नहीं लिया था तब ऐसा लगता था कि मुझे कोई क्या कह सकता है, अहंकार ऐसा था लेकिन अब सब एडजस्ट कर लेता हूँ।

दादाश्री : 'मैं होशियार हूँ', ऐसा रहता है?

प्रश्नकर्ता : 'मैं होशियार हूँ', ऐसा तो रहता है, लेकिन मुझे कोई कुछ कह न जाए, बस उसकी सावधानी रखी थी।

दादाश्री : किसी के दबाव में नहीं आना है, ऐसा कुछ था न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा तो था।

दादाश्री : 'मैं कुछ हूँ', ऐसा था न, वही रोग है। और उसी रोग के कारण टकराव होता है। यह ज्ञान मिलने के बाद भी यह रोग रहा करता है। फिर हम 'उससे' कहते हैं न, तो समझ जाता है और धीरे-धीरे यह रोग निकाल देता है। लेकिन नहीं कहा होता तो अंदर रह जाता न! वह रोग निकल जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : 'मैं कुछ हूँ', ऐसे रोग के लक्षण क्या हैं?

दादाश्री : उसके बहुत सारे लक्षण होते हैं, अज्ञानी जैसे ही लक्षण होते हैं सारे। खुद

का *धार्युं* (मनमानी) करता है, फलाना करता है, मान दे तो फिर मीठा लगता है। कई ऐसे रोग, बहुत सारे लक्षण होते हैं। मान दे और कड़वा नहीं लगे तो उसे ज्ञान नहीं रहेगा। यदि मान देते हों न, तो ज्ञान वाला व्यक्ति तो उब जाता है कि यह मान किसे मिल रहा है? चंदूलाल को मान मिल रहा है। चंदूलाल का क्या करना है? यानी कि इस रोग से तो बहुत बचकर रहने जैसा है।

कर्तापन की भ्रांति

सभी योनियों में भटक-भटक कर आया है, कहीं भी सच्चा सुख नहीं मिला। वहाँ अहंकार की गर्जनाएँ और विलाप ही किए हैं। अहंकार से दखल नहीं दे तो इसे जैसा है वैसा जानेगा। अब, अहंकार क्यों करता है, कि वह खुद करता नहीं है और कहता क्या है, 'मैंने ऐसा किया और वैसा किया'। लेकिन ये कहना है, वह नाटकीय रूप से बोलना है। भगवान कर्ता नहीं हैं और आप भी कर्ता नहीं हो। जो करता है, उसे बंधन होता है। यानी कि करती है कोई और शक्ति, वह व्यवस्थित शक्ति है। बाकी, उसमें मूल रूप से साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स (वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण) हैं। इस प्रकार से यह सारा विज्ञान से उत्पन्न हुआ है। यह सारा करता है कोई और लेकिन आप मानते हो कि, 'यह मैं कर रहा हूँ', बस इतना ही, इसी को कहते हैं अहंकार।

यानी कुछ भी 'मैं करता हूँ' ऐसा भान, वह कभी भी आत्मा प्राप्त नहीं करवा सकता। जब तक आप करते हो, तब तक भ्रांति में हो। जब तक जगत् में आप कुछ भी करते हो ऐसा भान है, तब तक एक अंश भी आत्मा का नहीं चखा है। लोग आकुल-व्याकुल रहते हैं या नहीं? निरंतर आकुल-व्याकुल, क्योंकि कर्ता पद हैं। 'मैं करता हूँ, वह करता है और वे करते हैं', ऐसा जब तक बोलते हैं तब तक भ्रांति है।

जब तक कर्तापद है तब तक अध्यात्म में जागृति ही नहीं मानी जाती, तब तक वह अध्यात्म में सो रहा है।

प्रश्नकर्ता : दादा के मिलने से पहले जो अहंकार था कि मैं कुछ हूँ, *धार्युं* करना हो तो कर पाते थे, अब नहीं कर पाते।

दादाश्री : *धार्युं* नहीं होता इसलिए नहीं करते अब। यह हो ही नहीं पाता सभी से। वह जो *धार्युं* हो पाता था, वह आपको उल्टे रास्ते पर ले जा रहा था।

प्रश्नकर्ता : *धार्युं* नहीं होता तब फिर डिप्रेशन (हताशा) आता है।

दादाश्री : खुद का *धार्युं* नहीं होता न, इसलिए फिर खाती नहीं है। रोने जैसी होकर, दबाव की वजह से चूप होकर बैठी रहती है। किसको मारने जाएगी, चूप होकर बैठी रहती है। फिर दूसरे दिन *कपट* करती है वापस। यह कैसी जाति है! *धार्युं* अनुसार करने जाती हैं पर नहीं हो पाता तो क्या करें? ऐसा यह सब नहीं करना चाहिए।

यदि आप कर्ता होते न, तो आपका *धार्युं* हो पाता। इस वर्ल्ड में यदि एक भी व्यक्ति खुद कर रहा होता तो खुद का *धार्युं* ही करता। लेकिन वैसे *धार्युं* एक सेकन्ड भी नहीं हो पाता। यह तो, करता है कोई और, लेकिन खुद इगोइज़म करता है कि, 'मैं करता हूँ' बस, इतना ही है।

अहंकार एक्सपर्ट होने से रोकता है

अब यह 'ज्ञान' ऐसा है न, कि यह सभी काम कर देता है। बाकी, हमें संसार का कुछ भी काम नहीं आता। लेकिन फिर भी काम अच्छा चलता है, सभी से अच्छा चलता है। सभी लोगों को तो चिल्लाना पड़ता है। मुझे तो चिल्लाना भी

नहीं पड़ता। फिर भी सभी की सारी कुशलता है, उससे भी ज़्यादा अच्छा काम होता है। अब जिन्हें चप्पल सिलनी आती है, उसे चप्पल सिलते रहने हैं! कपड़े सीना आए, उसे कपड़े सीते रहने हैं! और जिसे कुछ नहीं आए, उन्हें फालतू बैठे रहना है। कुछ आए नहीं, तो क्या करे फिर?

क्योंकि भगवान ने क्या कहा है कि जिसे कुछ भी आता है, वह ज्ञान अहंकार के आधार पर टिका है। जिसे नहीं आता है उसे अहंकार ही नहीं है न! अहंकार हो तो आए बगैर रहेगा नहीं न! मुझे तो सिर्फ यही आता है। फिर भी लोगों के मन में भ्रम है कि दादा सब जानते हैं! लेकिन क्या जानते हैं ये? कुछ भी नहीं जानते। 'मैं' तो 'आत्मा' की बात जानता हूँ, 'आत्मा' ज्ञाता-दृष्टा है, वह जानता हूँ, 'आत्मा' जो-जो देख सकता है वह 'मैं' देख सकता हूँ। लेकिन और कुछ नहीं आता। अहंकार होगा तब आएगा न! अहंकार बिल्कुल ही निर्मूल हो गया है। उसकी जड़ तक भी नहीं बची है, कि इस जगह पर था और उस जगह पर से उसकी कोई सुगंधी तक भी नहीं आती। इतनी हद तक जड़ें निकल चुकी हैं। उसके बाद का वह पद कितना मज़ेदार होगा!

मुझे तो भाषण देना भी नहीं आता। यह 'ज्ञान' है इतना ही आता है, दूसरा कुछ नहीं आता इस जगत् में। दूसरा कुछ नहीं आया इसलिए तो यह आया! और कहीं पर सीखने भी नहीं गया। वर्ना, जिसे देखो वह गुरु बनकर बैठेंगे। उसके बजाय इसमें 'एक्सपर्ट' (निष्णात) तो हो जाएँ, निर्लेप तो हो जाएँ!

यह तो हमारी कितने ही जन्मों की साधना होगी कि एकदम से फल हाज़िर हो गया! बाकी, इस जन्म में तो कुछ भी नहीं आता था। कुशलता तो मैंने किसी व्यक्ति में देखी ही नहीं है।

हम तो शून्य ही, कुछ आता ही नहीं था ऐसा मानकर चलो न! सब कैन्सल करके नीचे नये सिरे से रकम लिखनी है। कौन सी रकम? हमारी शुद्धात्मा की रकम पक्की! निर्लेप भाव, असंग भाव सहित! यह तो यहाँ पर संपूर्ण रकम दी हुई है। 'दादा' ने शुद्धात्मा दिया तब शुद्धात्मा हुए, वर्ना कुछ था ही नहीं। पैसे भर का भी सामान नहीं था!

एक ओर अहंकार हो और एक ओर 'एक्सपर्ट' होना, वे दोनों साथ में हो ही नहीं सकते। अहंकार ही 'एक्सपर्ट' होने से रोकता है।

'मैं कुछ जानता हूँ' लाए अजागृति

प्रश्नकर्ता : इस मोक्षमार्ग में सब से बड़ा बाधक कारण है, 'मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ' क्या इसे कहा जा सकता है?

दादाश्री : हाँ, यह आत्मघाती कारण है।

प्रश्नकर्ता : उसे ज़रा अधिक स्पष्ट कीजिए न। वह छूट जाए तो कैसे लक्षण होते हैं? वह दोष बरतता हो तब कैसे लक्षण होते हैं? और उसके सामने किस तरह से जागृति रह सकती है?

दादाश्री : सभी उल्टे व्यवहार 'इस' दोष से ही होते हैं। जिन्हें उल्टा कहा जाता है, वे सभी 'इस' दोष की वजह से ही होते हैं। मुख्य रूप से यह दोष कि 'मैं जानता हूँ'! बाकी सभी दोष उसके बाद में। इस दोष में से सब उगा है। *खेंच* (अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना) रहती है, तो वह इस दोष से ही, वर्ना तो सरलता होती है। जितना हमारे साथ ताल-मेल बैठता है, वैसा ही लोगों से ताल-मेल बैठना चाहिए। मेरे साथ क्यों ताल-मेल बैठ जाता है? जहाँ कुदरती रूप से ताल-मेल बैठ जाए, वह तो सहज चीज़ है। वहाँ आपका क्या पुरुषार्थ है? जहाँ ताल-मेल नहीं खाता, वहाँ ताल-मेल बैठाना, वही पुरुषार्थ है।

ऐसा रोग सभी में रहता है। 'मैं कुछ जानता

हूँ,' ज्ञान ऐसे कैफ सहित बढ़ता जाता है। इस कैफ का अंतराय नहीं होगा तब तो 'ज्ञान' बहुत अच्छी तरह से बढ़ जाएगा, 'फिट' हो जाएगा।

ऐसा कोई परिणाम तो आना चाहिए न? इस पर सोचना न, तो एक दिन समझ में आ जाएगा। जान लिया तो पता चल जाएगा लेकिन निष्पक्षपाती भाव होना चाहिए। फिर भी भीतर की अजागृति की वजह से पता न भी चले, तो फिर बाद में कभी पता चलेगा।

प्रश्नकर्ता : अभी किसी से दादाजी के 'ज्ञान' के बारे में बात करते हैं, तो पहले मन में ऐसा रहता है कि 'मैं जानता हूँ'।

दादाश्री : हाँ, बस वही यह रोग है न!

प्रश्नकर्ता : तो बात किस तरह करें, दादाजी?

दादाश्री : लेकिन वह बात तो, उसमें बरकत ही नहीं आती, कुछ मेल ही नहीं खाता न! सामने वाले को 'फिट' ही कैसे होगा? 'मैं जानता हूँ' वह बहुत बड़ा रोग है! खुद का जानना बाकी है फिर भी कहेगा, 'नहीं, मैं जानता हूँ'। यानी एक तो जानने का कैफ आया तो आवरण आता है और फिर नया जानने की जिज्ञासा टूट जाती है। 'मैं कुछ जानता हूँ', ज़रा सा भी ऐसा विचार आए, वह वापस अजागृति ला देता है।

गिरा विशेषता के अहंकार से

प्रश्नकर्ता : सामान्य मौकों पर जो बातचीत होती रहती है, उसमें दो-चार शब्द ऐसे बोलता है, ज्ञान के शब्द बोलकर खुशी लेता है, बातचीत में कोई दम नहीं होता। सामने वाले को तो ऐसा ही लगता है कि ये कितना अच्छा बोला!

दादाश्री : हाँ। विशेषता दिखाने के लिए, यही तो, ये भाई भी कह रहे हैं न! दूसरों में और अपने में फर्क मत मानना। यह तो विशेषता दिखाने के लिए बोलते हैं और वही सारे कषाय करवाते हैं न!

किसी जगह पर कोई बात करते हो? बातचीत में कहीं भी पड़ना ही मत क्योंकि लोग तो सुनेंगे, लेकिन खुद की क्या दशा होगी? लोगों को तो कान से सुनकर निकाल देना है लेकिन खुद को भी 'इन्टरेस्ट' (रस) आता है इसमें। क्योंकि अभी 'इगोइज़म' है न, वे सभी अंदर ताक लगाकर बैठे ही रहते हैं तो धीरे-धीरे उन्हें खुराक मिल जाती है।

इसलिए जानते रहना है कि जब तक इस अहंकार की हाज़िरी है तब तक और किसी चीज़ में नहीं पड़ना है। जिससे अहंकार को 'स्कोप' (मौका) मिले, वैसा रास्ता मत देना।

पूर्णाहुति करनी है या अधूरा रखना है? कच्चा रखना है? पूर्ण करना हो तो किसी भी जगह पर कच्चे मत पड़ना। कोई पूछे न, तब भी कच्चे मत पड़ना।

कुछ प्राप्ति का अहंकार आया कि गिर ही पड़ा समझो। ज्ञान का अहंकार यदि हमारे महात्माओं को हो जाए तो 'दादाजी' हैं इसलिए गिर नहीं पड़ते पर ज्ञानावरण आता है। अंतराय बाहर से आते हैं, वैसे ही अंदर से भी आते हैं। अहंकार अंतराय रूप है। उसके सामने तो अच्छी तरह तैयार हो जाना पड़ेगा।

पूर्णता बगैर गिरा देता है 'उपदेश'

जब तक पूर्णाहुति नहीं हो जाए तब तक बोलने की बात में पड़ना ही मत। यह पड़ने जैसी चीज़ नहीं है। हाँ, हम किसी को इतना कह सकते हैं कि, 'वहाँ पर सत्संग अच्छा है। ऐसा सब है, वहाँ पर जाओ'। इतनी बातचीत कर सकते हैं।

उपदेश नहीं दे सकते। यह उपदेश देने जैसी चीज़ नहीं है। यह 'अक्रम विज्ञान' है!

'दादा' का यह ज्ञान जिसने प्राप्त किया है, उस ज्ञान में से जो माल निकलता है न, उसे सुनकर तो पूरी दुनिया सबकुछ धर देगी और धर देने पर तो क्या होता है? फँसता है फिर! सभी कषाय जो उपशम हो चुके थे न, वे फटाफट जागृत हो उठेंगे। आकर्षण वाली वाणी है यह। यह ज्ञान आकर्षक है इसलिए मौन रहना। यदि पूरा हित चाहते हो तो मौन रहना। अगर दुकान जमानी हो तो बोलने की छूट है और दुकान चलेगी भी नहीं। दुकान खोलोगे तो भी नहीं चलेगी, खत्म हो जाएगी क्योंकि 'दिया हुआ ज्ञान' है न, तो उसे खत्म होने में देर नहीं लगेगी। दुकान तो क्रमिक मार्ग में चलती है। दो जन्म, पाँच जन्म या दस जन्म तक चलती है और फिर वह भी खत्म हो जाती है। दुकान खोलना यानी सिद्धि बेच देना। आई हुई सिद्धि को बेचने लगे, दुरुपयोग किया!

गोशाला जो था न, वह पहले तो महावीर भगवान का शिष्य था, खास, 'स्पेशल' शिष्य लेकिन अंत में वह विरोधी बनकर खड़ा रहा। गोशाला महावीर भगवान के पास बहुत समय तक रहा। फिर उसे ऐसा लगा कि मुझे यह सारा ज्ञान समझ में आ गया, इसलिए भगवान से अलग होकर कहने लगा कि 'मैं तीर्थंकर हूँ, वे तीर्थंकर नहीं हैं' और कितनी बार तो ऐसा भी कहता था कि, 'वे भी तीर्थंकर हैं और मैं भी तीर्थंकर हूँ'। अब ऐसा रोग घुस गया, फिर क्या दशा होगी उसकी?

अब, जब महावीर भगवान के पास था तब भी वहाँ पर सीधा नहीं रहा तो हमारे पास बैठा हुआ कैसे सीधा रहेगा? यदि कुछ गड़बड़ हो जाए तो क्या दशा होगी? और वह तो चौथे *आरे* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) की बात थी। यह तो पाँचवाँ *आरा* है, अनंत जन्म खराब कर देगा। अनादि से यों ही मार खाई है न, लोगों ने! यही की यही मार खाता रहा है। ज़रा सा भी स्वाद मिल जाए कि चढ़ ही जाता है ऊपर!

अपूज्य को पूजने से पतन

आज के जीव लालची बहुत हैं। वे खुद का ही शुरू करते हैं जगह-जगह पर, पूजे जाने के लिए सबकुछ करते हैं। पूजे जाने की कामना रखने वाले फिर कभी नया धारण नहीं कर सकते, सच्ची बात। हर कहीं पर लोग दुकान लगाकर बैठ गए हैं और पूजे जाने की कामना अंदर भरी रहती है कि किस तरह मुझे 'हाथ जोड़कर नमस्कार' करे! तो उसे अंदर मन में मीठा लगता है। कोई 'हाथ जोड़े' तो मीठा लगता है। इतना मज़ा आता है, वास्तव में!

पूजे जाने की कामना, उसके जैसा भयंकर कोई रोग नहीं है। सब से बड़ा रोग हो तो पूजे जाने की कामना! किसे पूजना है? आत्मा तो पूज्य ही है। देह को पूजना रहा ही कहाँ फिर? लेकिन पूजे जाने की इच्छाएँ-लालच है सारा।

क्या पूजे जाने की कामना होती है? बता देना मुझे, मैं उसे दबा दूँगा। हाँ, यह जड़ काट देंगे तो फिर बंद हो जाएगा। यह कामना बहुत जोखिम है। किस चीज़ की भीख है? पूजे जाने की भीख है। जब यों 'हाथ जोड़ते' हैं तो खुश। अरे! ये तो नर्क में जाने की निशानियाँ हैं! यह तो बहुत ही जोखिमदारी है। ऐसी आदत पड़ जाए तो वह जाती नहीं है।

मान की मिठास के पड़ते हैं मार

प्रश्नकर्ता : तो खुद के ये सारे दोष भी दिखाई देने चाहिए न?

दादाश्री : दिखाई देते हैं न!

प्रश्नकर्ता : अहंकार भी दिखाई देना चाहिए न?

दादाश्री : वह भी दिखाई देता है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसके गिर जाने का कारण क्या होता है?

दादाश्री : वह अहंकार ही खुराक ले जाता है यह सारी। यह जो गर्व रस करवाता है न, वह अहंकार ही यह सब करवाता है हमसे, कि 'यह तो बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, लोगों को अच्छा लगा'।

प्रश्नकर्ता : अहंकार का यह जो रस अधिक चख लेता है उसके कारण वापस ऐसे गिरना पड़ता है न?

दादाश्री : हाँ! इसमें तो बहुत मिठास आती है। जैसे कि लोग कहते हैं न, 'यह मैंने किया'। तब करने का गर्व उत्पन्न होता है। कमाई करता है तब तक गर्व रस उत्पन्न होता है और नुकसान होता है तब क्या कहता है? 'भगवान ने किया।' अरे पगले, कमाया तब 'मैंने किया' कह रहा था। जब गर्वरस उत्पन्न होता है, उस घड़ी मिठास आती है। जब मीठा लगे न, तब जान लेना कि इसकी मार पड़ने वाली है। जागृति किसे कहते हैं कि जो सोता नहीं है, उसे जागृति कहते हैं। जागृति हो तो चोर नहीं घुस पाएँगे। संपूर्ण जागृति कब आती है? जब अहंकार का विलय हो जाए, तब।

कड़वाहट से बढ़ें जागृति

प्रश्नकर्ता : जागृति की यह जो निरंतरता खंडित होती है न, तब ऐसे सब दोष बीच में काम कर जाते हैं?

दादाश्री : ये जो दोष हैं, वे बीच में उसे 'ब्रेकडाउन' कर (तोड़) देते हैं। इसलिए भगवान ने कहा है न, कि *'केवळ निज स्वभाव नुं अखंड वर्ते ज्ञान'* (केवल निज स्वभाव का अखंड बरते ज्ञान) लेकिन वह खंडित हो जाता है। इसलिए मिठास की आदत छोड़ दो और 'कड़वा' तो लगभग कोई कहता नहीं है। क्योंकि व्यवहार ऐसा है कि कोई कुछ कड़वा नहीं कहता। फिर भी कड़वा कहे तो जानना कि यह तो आपका 'व्यवस्थित' है। भुगते उसी की भूल!

प्रश्नकर्ता : कड़वाहट में तो अधिक जागृति रहती है।

दादाश्री : यानी मिठास में ही भ्रमित हो जाता है! कड़वा कहने वाला इस दुनिया में कोई मिलता ही नहीं है। मिठास से रोग बढ़ेंगे। कड़वी वाणी सुनने का मौका ही न आए, ऐसा अपना जीवन होना चाहिए। फिर भी यदि कड़वी वाणी सुननी पड़े तो सुन लेना। वह तो हमेशा हितकर ही होती है। इस मिठास से ही सारे रोग अटके हुए हैं, उस कड़वाहट से रोग जाएँगे। जागृति किसमें से उत्पन्न हुई है? कड़वाहट में से। अब, यदि किसी भी प्रकार की बाधा या आपत्ति नहीं हो, तब अखंड ज्ञान बरतेगा। यह तो अखंड जागृति का मार्ग है।

मोक्षमार्ग के भयस्थानक

अत: जो कुछ मोक्षमार्ग में बाधक हो ऐसा आया तो उसे छोड़ देना और वापस आ जाना। वह ध्येय पर है ऐसा कहलाता है न! खुद का ध्येय चूके नहीं, कैसी भी कठिन परिस्थिति में भी खुद का ध्येय नहीं चूके ऐसा होना चाहिए। आपका ध्येय अनुसार चलता है क्या कभी? उल्टा नहीं कुछ भी? यह तो सहज हो गया है, नहीं?

प्रश्नकर्ता : इसलिए अंदर 'हैन्डल' मारते रहना पड़ता है।

दादाश्री : मारते रहना पड़ता है? लेकिन क्या वे अंदर वाले मान जाते हैं? तुरंत ही?

प्रश्नकर्ता : तुरंत ही।

दादाश्री : तुरंत, देर ही नहीं? यह अच्छा है। जितना वे मान जाएँगे, उतना ही वह मुक्त होने की निशानी है। उतने ही आप उससे अलग हैं, वह निशानी है उसकी। क्योंकि खुद कोई रिश्वत नहीं लेता। रिश्वत लेगा तो वे बात नहीं मानेंगे। 'खुद' उनसे रिश्वत खाता है तो वे आपकी बात नहीं मानेंगे फिर। 'खुद' स्वाद ले आता है, फिर 'अंदर वाले' नहीं मानते।

यह व्यवहार तो दूसरी ओर ही ले जाता है न! अनादि से जिसकी आराधना की है, वह यही एक मार्ग है न! व्यवहार तो हमेशा ही उस तरफ की आदत वाला होता है न! अत: अगर उस तरफ जाए तो भी हमें अपने ध्येय के अनुसार चलाना है। अगर पुराना रास्ता देखे तब बैल तो उसी रास्ते पर चलता जाता है। हमें अब अपने रास्ते पर ध्येय के अनुसार चलना है। इस रास्ते से नहीं, दूसरे रास्ते से जाना है। 'ऐसे चल' कहना।

अत: अगर खुद रिश्वत नहीं लेता है तो अंदर वाले तुरंत ही कहे अनुसार मुड़ जाते हैं। लेकिन अगर रिश्वत लेता है तो फिर वे मार खिलाते हैं, हर बात में मार खिलाते हैं। इसलिए ध्येय से पीछे नहीं हटना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यह रिश्वत कैसी होती है?

दादाश्री : चख आता है और चखते समय फिर जब मीठा लगता है न, तो फिर वहाँ पर बैठ जाता है। 'टेस्ट' कर आया इसलिए वापस फिर थोड़ा एकाध-दो बोतल पी आता है।

यह सब चोर नियत कहलाती है। ध्येय पर जाना है, वह और चोर नियत, ये दोनों साथ में कैसे रह सकते हैं? नियत पक्की रखनी चाहिए, कोई भी रिश्वत लिए बगैर। यह तो वह मस्ती चखने की आदत होती है, इसलिए ऐसे वहाँ बैठकर ज़रा वह मस्ती के आनंद में रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रकृति की मस्ती?

दादाश्री : तो फिर और क्या? उसे उसी की आदत पड़ गई है न! इसलिए अगर 'आप' कहो कि, 'नहीं, हमें तो अब ऐसे जाना है। मुझे मस्ती नहीं चाहिए। हमारे ध्येय के अनुसार चलना है'। ये प्रकृति की मस्तियाँ तो भूल-भूलैया में ले जाती हैं। जो ध्येय तुड़वा दें, वे अपने दुश्मन हैं। अपने ध्येय का नुकसान करवाए तो वह कैसे पुसाएगा?

ये तो हम सारे भयस्थान दिखा रहे हैं। भयस्थान नहीं दिखाएँगे न, तो सब उल्टा हो जाएगा। ये सभी पुण्यशाली हैं न, बात भी प्रकट हुई है न! नहीं तो बात कैसे पता चलेगी? और मैं इसमें कहाँ गहरा उतरने जाऊँ? यह तो बात निकली तो निकली, नहीं तो कौन जानता था कि ऐसा सब चल रहा होगा?

होम में गुरुतम, फॉरेन में लघुतम

हमारी यही भावना है कि भले एक अवतार देर हो जाए तो हर्ज नहीं, लेकिन यह 'विज्ञान' फैलना चाहिए और 'विज्ञान' से लोगों को लाभ होना चाहिए। इसलिए मैं खुलासा करने के लिए आया हूँ। मेरे पास अवकाश है। मुझे कोई काम नहीं है। सब से ज़्यादा फुरसत वाला व्यक्ति मैं हूँ और बिल्कुल बुद्धि रहित सिर्फ मैं ही हूँ इसलिए मुझे कोई झंझट नहीं है। आपको तो झंझट रहती है। वर्ना, मैं कहीं आपसे बड़ा नहीं हूँ, आपको क्या ऐसा लगता है? यह तो व्यवहार की खातिर ऐसे उच्च पद पर बैठे हैं।

और फिर मेरी (व्यवहार में) 'हाइट' (ऊँचाई) कितनी है, वह आप जानते हो? लघुतम! लघुतम यानी क्या? इस दुनिया में जितने भी जीव हैं, उनमें सब से छोटा मैं हूँ। वह मेरी 'हाइट' है। फिर क्या इससे आपको कोई परेशानी हो, ऐसा है कुछ? यानी इस भौतिक में, इस नाम-रूप में,

पैसा-मान-तान, इन सभी बातों में लघुतम और दूसरी हाइट यानी सेल्फ (आत्मा) को लेकर गुरुतम हैं हम। यानी 'होम डिपार्टमेन्ट' (आत्म विभाग) में हम गुरुतम और 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट' (अनात्म विभाग) में लघुतम! आप 'फॉरेन' में गुरुतम होने जाते हो इसलिए अंदर 'होम डिपार्टमेन्ट' में लघुतम हो जाते हो।

लघुतम का 'टेस्ट इग्ज़ामिनेशन'

प्रश्नकर्ता : आप 'रिलेटिव' में लघुतम हो चुके हैं, उसका उदाहरण दीजिए।

दादाश्री : उदाहरण में तो हम यह खुल्ला, बोलता हुआ उपनिषद ही हैं न! बोलता हुआ पुराण हैं न!

'रिलेटिव' में लघुतम होने का मतलब आपको समझाऊँ। यहाँ से आपको गाड़ी में ले जा रहे हों और दूसरे परिचित आ जाएँ तो फिर आपको कहेंगे, 'अब उतर जाओ'। तब बगैर किसी भी 'इफेक्ट' (असर) के उतर जाना। फिर वापस थोड़ी देर बाद कहेंगे, 'नहीं, नहीं, आप आइए'। फिर वापस आपको बैठाया तो आप बैठ जाते हो। वापस दूसरे कोई परिचित मिलें तब वे आपसे कहें, 'उतर जाओ' तो बगैर किसी भी 'इफेक्ट' उतर जाना और किसी भी 'इफेक्ट' बिना चढ़ जाना। ऐसा आठ-दस बार हो तो क्या होगा? लोगों को क्या होगा? फट जाएँगे। जैसे दूध फट जाता है वैसे फट जाएँगे!

प्रश्नकर्ता : एक ही बार में फट जाएँगे।

दादाश्री : और मुझे सताइस बार करें तब भी ऐसे का ऐसा! और वापस जाकर वापस आ भी जाऊँगा। वे कहेंगे, 'नहीं, नहीं। आप वापस आइए'। तो वापस आ भी जाऊँगा क्योंकि हम लघुतम हो चुके हैं।

लघुतम पद में हमेशा सेफसाइड

प्रश्नकर्ता : तो दादा, इसमें आप लघुतम पद को क्यों बहुत महत्व देते हैं?

दादाश्री : लेकिन यह लघुतम, तो हमेशा 'सेफसाइड' (सुरक्षित) है! जो लघुतम है वह तो हमेशा 'सेफसाइड' है, गुरुतम वाले को भय रहता है। 'लघुतम' कहा तो फिर हमें गिरने का क्या भय? जो ऊँचाई पर बैठे हों, उन्हें गिरने का भय होता है। जगत् में लघुतम भाव में कोई है ही नहीं न! जगत् गुरुतम भाव में रहता है। जो गुरुतम होता है, वह गिरता है। यानी हम तो लघुतम होकर बैठे हैं। हमें जगत् के प्रति जो भाव है, वह लघुतम भाव है इसलिए हमें गिरने का कोई भय नहीं है, कुछ स्पर्श नहीं करता और न ही कुछ बाधा डालता है।

अत: 'रिलेटिव' में हम लघुतम होकर बैठे हैं। हम कहें कि, 'भाई, तुझसे तो हम छोटे हैं, तू गाली देता है, मैं तो उससे भी छोटा हूँ। बहुत हुआ तो वह गधा कहेगा', तो हम तो गधे से भी बहुत छोटे हैं। गधा तो 'हेवी लोड' (भारी वजन वाला) है न! और हममें तो 'लोड' है ही नहीं। इसलिए यदि गाली देनी हो तो मैं लघुतम हूँ। लघुतम तो आकाश जैसा होता है, आकाश परमाणु जैसा होता है। लघुतम को मार स्पर्श नहीं करती, गालियाँ स्पर्श नहीं करती, उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता।

लघुतम अहंकार से मोक्ष की ओर

लघुतम, वह तो अपना केन्द्र ही है। इस केन्द्र में बैठे-बैठे गुरुतम प्राप्त होगा। अपनी तो नयी 'थ्योरीज़' हैं सारी, बिल्कुल नयी!

प्रश्नकर्ता : इस लघुतम का अर्थ कैसे निकाला? अपना जो अहंकार है, वह अहंकार ज़ीरो डिग्री पर आ जाए तो वह लघुतम है?

दादाश्री : नहीं। अहंकार तो वैसे का वैसा ही है। लेकिन अहंकार की मान्यता ऐसी हो जाती है कि, मैं सब से छोटा हूँ और वह भी एक प्रकार का अहंकार ही है। ऐसा है, इस लघु का अर्थ 'छोटा हूँ' हुआ। फिर लघुतर अर्थात् छोटे से भी मैं छोटा हूँ और लघुतम अर्थात् सभी मुझसे बड़े हैं, ऐसा अहंकार। यानी वह भी एक प्रकार का अहंकार है!

अब जो गुरुतम अहंकार है, यानी कि बड़े होने की भावनाएँ, 'मैं इन सभी से बड़ा हूँ', ऐसी मान्यताएँ हैं। उनसे यह संसार खड़ा हो गया है। जबकि लघुतम अहंकार से मोक्ष की तरफ जा सकते हैं। लघुतम अहंकार अर्थात् 'मैं तो इन सब से छोटा हूँ' ऐसा करके सारा व्यवहार चलाना। उससे मोक्ष की तरफ चला जाता है। 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा मानता है, इसलिए यह संसार 'रेसकोर्स' (स्पर्धा) में उतरता है और वे सभी भान भूलकर उल्टे रास्ते पर जा रहे हैं। यदि लघुतम का अहंकार हो न, तो वह लघु होते-होते एकदम लघुतम हो जाता है। तब वह परमात्मा हो जाता है!

लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखना, वह इस अक्रम विज्ञान का 'फाउन्डेशन' (नींव) है। लघुतम भाव में रहना और जीवमात्र के प्रति, पूरे ब्रह्मांड के जीवों के प्रति अभेद दृष्टि रखना, यही इस विज्ञान का 'फाउन्डेशन' है।

लघुतम भाव में दादा की आज्ञा

अब हम क्या कहते हैं? कि भाई, आपमें यह 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' (भेदरेखा) 'एक्ज़ेक्ट' (एकदम सही) पड़ चुकी है कि इतना 'रिलेटिव' और इतना 'रियल'। 'रियल' में ऐसा है, 'रियल' में शुद्धात्मा और 'रिलेटिव' में आपको वे पाँच वाक्य दिए हैं। बाकी सब तो *निकाली* है।

प्रश्नकर्ता : उसका *निकाल* (निपटारा) होता जा रहा है?

दादाश्री : हाँ, अपने आप ही *निकाल* होता ही रहता है। संडास के लिए राह नहीं देखनी पड़ती। जो राह देखे वह मूर्ख माना जाता है। यानी बाकी सब *निकाली* है तो अब क्या होना है?

प्रश्नकर्ता : लघुतम!

दादाश्री : लघुतम! बस, इतना ही भाव और 'दादा' की आज्ञा लघुतम भाव में है। इसलिए अब आपको 'रिलेटिव' में सिर्फ लघुतम होने की ज़रूरत है। यानी 'रियल' और 'रिलेटिव' के बीच 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' आए और 'रिलेटिव' में खुद लघुतम हो जाए तो इस संसार के दुःखों में भी समाधि रहे, और वही सच्ची समाधि!

सर्वस्व भीख छूटते ही 'मोक्ष'

हमें किसी भी प्रकार की भीख नहीं है, इसलिए हमें यह पद मिला है। जो सर्वश्रेष्ठ पद है, जो पूरे ब्रह्मांड में सब से बड़ा पद है, वह प्राप्त हुआ है। किसी भी प्रकार की भीख नहीं रही इसलिए!

भगवान के प्रतिनिधि कब कहे जाएँगे? ज्ञान जब शुद्ध रहे। जिन्हें स्त्री की भूख नहीं, स्त्री के विचार ही न आए। लक्ष्मी की भीख नहीं, सोना या लक्ष्मी, किसी भी चीज़ को छुए नहीं। शिष्यों की भीख नहीं है, मंदिर बनवाने की भीख नहीं है। मान की भीख न बढ़े। कीर्ति की भीख न हो। यदि कोई अपमान करे तो आशीर्वाद दें तब वे भगवान उन्हें खुद का प्रतिनिधित्वपन देते हैं। खुद की सत्ता उन्हें देते हैं। ऐसी सत्ता हमारे हाथ में हैं। कैसी सत्ता? संपूर्ण सत्ताधीश! क्योंकि हमें किसी भी प्रकार की भीख नहीं रही और यदि भीख होगी तो क्या होगा? वह उसी में रचापचा रहेगा। अंत में भीख ही निकाल देनी है न! सभी प्रकार की भीख, भीख और भीख! वहाँ अपना दारिद्र्य कैसे जाए?

जिसकी तमाम प्रकार की भीख छूट जाएँ, उसके हाथ में इस जगत् की सत्ता आ जाती है। अभी मेरे हाथ में आ चुकी है, क्योंकि मेरी सर्वस्व भीख छूट गई है। जब तक निर्वासनिक पुरुष नहीं मिलेंगे, तब तक सच्चा धर्म प्राप्त नहीं होगा। निर्वासनिक पुरुष तो जगत् में कभी ही मिलते हैं। तब अपना मोक्ष का काम हो जाता है।

इस जगत् में जिसकी सर्वस्व प्रकार की भीख चली गई हो, उसे इस जगत् में तमाम सूत्र हाथ में दे दिए जाते हैं। यह 'वर्ल्ड' (जगत्) ही अपनी मालिकी वाला है लेकिन सत्ता प्राप्त नहीं होती। वह तो जितना-जितना शुद्ध होता जाता है उतनी-उतनी सत्ता प्राप्त होती जाती है। यदि मोक्ष में जाना है तो सबकुछ साफ करना पड़ेगा। बिल्कुल प्योर! समाधि सुख कब बरतता है? जिसे कुछ भी नहीं चाहिए, सारी ही गाँठे छूट जाएँ, उसके बाद समाधि सुख बरतता है।

ज्ञान के बाद गाँठों का छेदन, पराक्रम भाव से

जैसे-जैसे सत्संग होगा, वैसे-वैसे खाली होता जाएगा। अब खाली होने लगा है। पहले उन गाँठों को पोषण मिलता था और वे अधिक मोटी होती जा रही थी। एक तरफ फूट भी रही थी और दूसरी तरफ बढ़ भी रही थी। *पूरण* (चार्ज होना) भी हो रहा था और *गलन* (डिस्चार्ज होना) भी हो रहा था। अब सिर्फ *गलन* हो रहा है। इसलिए हमने तय किया है कि, 'भाई, अब बाड़ में एक भी गाँठ नहीं रहने देना है'। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि, 'भाई, खोद-खोदकर निकाल दो। जहाँ बेल दिखें वहाँ गाँठ हैं। जहाँ तुरई की बेल दिखें, वहाँ पर तुरई है और कंकोड़ी कि बेल दिखे वहाँ पर कंकोड़ी है। उन्हें खोदकर निकाल दो और फिर आप मुझ से कहने आओ कि 'साहब, मैंने सभी (गाँठें) निकाल दी, अब मेरे यहाँ बेल नहीं उगेगी न?' तब हम कहेंगे, 'नहीं, अभी तो अगले साल देखना! कोई गाँठ अंदर रह गई होगी तो तीन साल तक देखना पड़ेगा, बस। फिर खत्म हो गई। उसके बाद निर्ग्रंथ हो गए'!

अब गाँठों का *गलन* होता रहता है। यानी कि दस सेर की होगी, वह आठ सेर की हो जाएगी। जो आठ सेर की होगी, वह सात सेर की हो जाएगी। सात सेर की छह सेर हो जाएगी। ऐसे करते-करते खत्म होकर रहेंगी। लेकिन जिनका *पूरण* और *गलन* होता रहता है, उनका कब अंत आएगा?

प्रश्नकर्ता : जब तक यह शरीर है तब तक गाँठें रहेंगी ही न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। जब तक ग्रंथि होंगी तब तक वह निर्ग्रंथ नहीं कहलाएगा। हम निर्ग्रंथ कहलाते हैं। जिसमें बाहर की गाँठ नहीं हो और अंदर की गाँठ हो, वह गाँठ अंदर खींचती है। यानी जब हम बातचीत कर रहे हों, उस समय आप न जाने किस सोच में पड़ गए होते हो!

जब तक वे गाँठें खत्म नहीं होंगी तब तक निर्ग्रंथ नहीं हो पाएगा। पहले निर्ग्रंथ होगा। 'परम गुरु निर्ग्रंथ सर्वज्ञदेव'। वे निर्ग्रंथ होते हैं, अंदर की गाँठें नहीं होती। कितनी गाँठें पड़ जाती हैं, इसलिए तो हास्य गायब हो जाता है। जैसे-जैसे गाँठें टूटती जाएँगी वैसे-वैसे हास्य खुलता जाएगा। मुक्त हास्य चाहिए।

आपको अभी यह ज्ञान मिला है। अगले जन्म में पराक्रम उत्पन्न होगा। यह जो दादा का पराक्रम है, वह गतज्ञान का पराक्रम है। आपको जो यह ज्ञान मिला है, उसका पराक्रम अगले जन्म में आएगा। तब तक पराक्रम उत्पन्न नहीं होगा। तब तक वह परिणमित नहीं होगा। जब परिणमित होगा तब वह फल देगा।

प्रश्नकर्ता : अत: आपमें अभी जो पराक्रम उत्पन्न हुआ है, वह गतज्ञान के आधार पर है?

दादाश्री : हाँ, यह पराक्रम गतज्ञान के आधार पर ही है। पराक्रम कब कहलाता है कि जब शब्द पाताल में से निकलें। यहाँ पर अगर आप मेरे कहे हुए शब्द बोलोगे तो वह नहीं चलेगा। पाताल के शब्द, अंदर से शास्त्र बोलें जा रहे हों, उसे पराक्रम कहा जाएगा, गतज्ञान पराक्रम!

ज्ञानी कृपा से छूटती हैं सर्व गाँठें

जब तक दृष्टि मलिन है, तब तक करोड़ों वर्ष बीत जाएँ फिर भी संबोधि (सम्यक् दृष्टि) प्राप्त नहीं होती। दृष्टि भौतिक की तरफ है। उसकी दृष्टि भौतिक में से क्यों नहीं छूटती? यानी हम समझ जाते हैं कि इसमें कोई गाँठ है यह? गाँठ छुड़वाने का प्रयत्न करते हैं।

इसलिए अब गाँठें फूटे हमें उसमें हर्ज नहीं है। गाँठों से तो कहना कि 'जितनी फूटनी हो उतनी फूट, तू ज्ञेय है और हम ज्ञाता हैं'। ताकि हल आ जाए। जितना फूट चुका है उतना वापस नहीं आएगा। अब जो फूटता है वह नया है, लेकिन उस गाँठ का बढ़ना बंद हो गया। वर्ना वे गाँठें तो इतनी बड़ी, जमीकंद जितनी बड़ी होती हैं। कितनों को तो मान की गाँठें घंटे भर में चार जगह पर फूटती हैं। इस ज्ञान के मिलने के बाद सभी गाँठें टूटने लगती हैं, वर्ना गाँठें टूटती नहीं हैं।

जब तक ग्रंथि भेदन न हो जाए तब तक निर्ग्रंथ नहीं हो पाएगा। आखिर में निर्ग्रंथ होना है और इस जन्म में निर्ग्रंथ हो सकें, ऐसा है। अपना यह ज्ञान निर्ग्रंथ बनाए, ऐसा है। जो थोड़ी बहुत गाँठें बची होंगी, उनका अगले जन्म में निकाल हो जाएगा, लेकिन सभी ग्रंथियों का निबेड़ा आ जाए, ऐसा है!

ये गाँठें, वे तो आवरण हैं! जब तक ये गाँठें हैं तब तक आत्मा का स्वाद नहीं आने देंगी। इस ज्ञान के बाद अब गाँठें धीरे-धीरे विलय होती जाएँगी, बढ़ेंगी नहीं अब।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी कृपा के बिना हम से वे ग्रंथियाँ भेदी नहीं जा सकेंगी।

दादाश्री : उनका तो भेदन हो जाएगा पूरा। कृपा होती है न, तो सभी का भेदन हो जाता है। कृपा से क्या नहीं हो सकता? भयंकर कर्मों को भस्मीभूत कर देते हैं, वे ज्ञानी पुरुष क्या नहीं कर सकते?

इसलिए अब इस जन्म में काम निकाल लेना है। उधार तो होता है, किसी का लाख का और किसी का पाँच लाख का होता है। लेकिन जिसने समेटना शुरू कर दिया है, जिसे समेटना ही है, उसे देर नहीं लगेगी।

यहाँ तो खुद का मन इतना मज़बूत कर लेना है न, कि ''इस जन्म में जो हो, भले ही देह जाए, लेकिन इस जन्म में कुछ 'काम' कर लूँ'' ऐसा तय करके रखना चाहिए। तब फिर अपने आप काम होगा ही। आपको अपना तय करके रखना चाहिए। आपकी तरफ से ढील नहीं रखनी है। जहाँ ऐसा प्राप्त हुआ है वहाँ ढील नहीं रखनी है।

'ज्ञानी पुरुष' की समझ से समझ मिलानी है, 'पैरेलल टु पैरेलल'। वर्ना 'रेल्वे लाइन' उड़ जाएगी। 'खुद की' समझ तो डालनी ही नहीं है। अंदर समझ है ही नहीं न! रत्ती भर भी समझ नहीं है। खुद की समझ तो इसमें चलानी ही नहीं है। खुद में समझ है ही नहीं न! कुछ भी समझ नहीं है। यदि समझ होती न, तो भगवान हो जाता!

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में आगामी सत्संग कार्यक्रम

अडालज

31 अक्तूबर (गुरु) रात 8-30 से 10-30 **दिपावली के अवसर पर विशेष भक्ति**

2 नवम्बर (शनि) सुबह 8 से 9-10 **नूतन वर्ष (वि. सं. 2081) अवसर पर अन्नकूट-पूजन-आरती**
सुबह 10-30 से 11-30 और शाम 5-30 से 6-30 (पूज्यश्री के द्रष्टि दर्शन)

23 नवम्बर (शनि) शाम 5 से 7 **सत्संग** और **24 नवम्बर** (रवि) शाम 4 से 7-30 - **ज्ञानविधि**

21 से 28 दिसम्बर आप्तवाणी 14 भाग-4 पर सत्संग पारायण (हिन्दी-अंग्रेजी में ट्रान्सलेशन उपलब्ध रहेगा।)

29 दिसम्बर **श्री सीमंधर स्वामी की छोटी प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा**

वडोदरा में परम पूज्य दादा भगवान का 117वाँ जन्मजयंती महोत्सव

10 नवम्बर (रवि) शाम 6 से 10-30 - **महोत्सव शुभारंभ (सांस्कृतिक कार्यक्रम)**

11 नवम्बर (सोम) सुबह 10 से 12-30 - **सत्संग** और शाम 5-30 से 7-30 - **सत्संग**

12-13 नवम्बर (मंगल-बुध) सुबह 10 से 12-30 - **सत्संग** और रात 8 से 10-30 - **सत्संग**

14 नवम्बर (गुरु) सुबह 8 से 9-30 - **जन्मजयंती के अवसर पर पूजन-संदेशो-आरती**
सुबह 10 से 1 और शाम 5-30 से 7-30 (पूज्यश्री के द्रष्टि दर्शन)

15 नवम्बर (शुक्र) सुबह 10 से 12-30 - **सत्संग** और शाम 7 से 10-30 - **ज्ञानविधि**

सूचना : रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है। रजिस्ट्रेशन की अधिक जानकारी Akonnect ऐप पर उपलब्ध है।

स्थल : नवलखी ग्राउन्ड़, वडोदरा, गुजरात. **संपर्क :** 9090515149

पुणे में निष्पक्षपाती त्रिमंदिर का भव्य प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव

12 फरवरी (बुध) शाम 5 से 7 - **सत्संग**

13 फरवरी (गुरु) सुबह 10 से 12-30 - **सत्संग** और शाम 4-30 से 7 - **सत्संग**

14 फरवरी (शुक्र) सुबह 9-30 से 12-40 - श्री शिव मंदिर में स्थापित सभी भगवंतो की प्राणप्रतिष्ठा
शाम 4-30 से 7 - **सत्संग**

15 फरवरी (शनि) सुबह 9-30 से 12-15 - श्री कृष्ण मंदिर में स्थापित सभी भगवंतो की प्राणप्रतिष्ठा
शाम 3-30 से 7 - **ज्ञानविधि**

16 फरवरी (रवि) सुबह 9 से 12-15 - श्री सीमंधर स्वामी मंदिर में स्थापित सभी भगवंतो की प्राणप्रतिष्ठा

सूचना : पांच दिवसीय प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव में (टेंट में) रहने की और भोजन की सुविधा नि:शुल्क रहेगी। रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है। रजिस्ट्रेशन की अधिक जानकारी Akonnect ऐप के द्वारा दी जाएगी।

स्थल : त्रिमंदिर, पुणे-बेंगलुरु हाईवे रोड़, खेड़ शिवापुर के पास, वरवे बीके, पुणे, महाराष्ट्र.

संपर्क : 7218473468, 9425643302

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687, **भावनगर :** 9313882288, **अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

अडालज : जन्माष्टमी का उत्सव : ता. 26 अगस्त 2024

अडालज : पर्युषण पारायण - दर्शन : ता. 31 अगस्त से 8 सितम्बर 2024

अक्तूबर 2024
वर्ष-19 अंक-12
अखंड क्रमांक - 228

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Licensed to Post Without Pre-payment
No. PMG/NG/036/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

मोक्ष का हेतु पूरा करने के लिए यह जन्म

हमें इस मनुष्य जन्म में क्या काम करना है? तब कहते हैं कि मोक्ष हेतु के लिए पर्याप्त हो, उतना ही काम पूरा करना है। मोक्ष के हेतु के लिए जो साधन मिल जाएँ, उन साधनों की आराधना के लिए यह मनुष्य देह है। अभी तो, सांसारिक हित का भान किसे कहेंगे? जिसमें नैतिकता की कक्षा हो, प्रामाणिकता की कक्षा हो, जिसका लोभ नॉर्मल हो, जिसमें कपट नहीं हो, मान भी नॉर्मल हो, उसे सांसारिक हित का भान कहेंगे। बाकी, जो एब्नॉर्मल लोग हैं, क्या उन्हें हित का भान रहता होगा? जो लोभांध हो चुका हो, मानांध हो चुका हो, वह किसी के साथ सिर टकरा दे, वह कैसे कह सकते हैं? जिसे सांसारिक हित का भान हो, उसे मनुष्य कहते हैं। वर्ना यदि इनका फोटो खींचें तो लोग कहेंगे ज़रूर कि मनुष्य का फोटो है, परंतु भीतर मनुष्य के गुण नहीं हैं।

-दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner.
Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road,
At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.